* ओ३म् *

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः षष्ठो भागः

स्त्रैणताद्धितः

* * * * * *

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां पञ्चमो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां अष्टमं पुस्तकम्

* ओ३म् *

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः षष्ठो भागः

स्त्रैणताद्धितः

* * * * * *

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां पञ्चमो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां अष्टमं पुस्तकम्

अजमेरनगरे वैदिक-यन्त्रालये मुद्रितः

सृष्टयब्दाः १,९६,०८,५३,०९१

सातवींवार १०००

विक्रम संवत् २०४८

मूल्य रु० ४०.००

भूमिका

यह अष्टाध्यायी का पांचवां भाग, और पठन पाठन में आठवां पुस्तक है। मैंने इसको बनाना आवश्यक इसलिये समझा है कि पढ़ने पढ़ानेवालों को 'स्त्री' और 'तद्धित' प्रत्ययों का भी बोध होना अवश्य उचित है। इसके जाने विना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता। विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है, वैसा अन्य से नहीं हो सकता। इसमें थोड़ा सा तो स्त्रीप्रत्यय का प्रकरण है, बाकी दोनों अध्याय तद्धित के ही हैं। इनमें से मुख्य मुख्य सूत्र, जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृत में उपयुक्त हैं, उन को लिख कर, भाष्य के वार्तिक, कारिका, उदाहरण, प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं, जिस से 'स्त्रीप्रत्यय' और 'तद्धित' का भी यथावत् बोध हो।

इस में बहुत कर के 'उत्सर्ग' और 'अपवाद' के सूत्र हैं। जैसे—शैषिक के अपवाद सब तद्धित सूत्र, और अण् का अपवाद इञ्, और इञ् के अपवाद यञ् आदि प्रत्यय हैं। जो अपवाद सूत्र हैं, वे उत्सर्ग के विषय ही में प्रवृत्त होते हैं, उन से जो बाकी विषय रहता है, सो उत्सर्ग का होता है। परन्तु अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र कभी प्रवृत्त नहीं होते। जैसे—चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक राजा, और माण्डलिक के राज्य में कुछ थोड़े ग्रामवाले, उनके विषय में कुछ थोड़ी भूमि वाले अपवादवत्, और बड़े राज्यवाले उत्सर्गवत् होते हैं, वैसे ही सूत्रों में भी समझना चाहिये।

कोटि कोटि धन्यवाद परमात्मा को देना चाहिये कि जिसने अपनी वेदविद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों का परमहित किया

है, कि जिस को पढ़के महामुनि पाणिनि सदृश पुरुष हो गये। जिन्होंने हज़ार श्लोकयुक्त छोटे ही ग्रन्थ अष्टाध्यायी, और कुछ कम चौबीस हज़ार श्लोकों के बीच महाभाष्य ग्रन्थ में समग्र वेद और लौकिक संस्कृत शब्दरूपी महासमुद्र को भी यथायोग्य सिद्ध करके विदित करा दिया है, कि जिस से एक शब्द भी बाकी नहीं रह गया। उन को भी अनेक धन्यवाद देना चाहिये, कि जो हम लोगों पर बड़ा उपकार कर गये हैं। वैसे उनको भी धन्यवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रन्थों के पढ़ने पढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्कपट होकर तन मन धन से प्रवृत्त रहते हैं।

क्योंकि 'तदधीते तद्वेद' जो विद्वान् व्याकरण को पढ़ें और पढ़ावें उन्हीं को 'वैयाकरण' कहते हैं। और जो महायोगीप्रणीत सम्पूर्ण गुणयुक्त निर्दोष शास्त्र को छोड़ कर अपनी क्षुद्र बुद्धि से प्रतिष्ठा के लिये अकिञ्चित्कर वेदविद्यारहित 'सारस्वतचन्द्रिका' 'मग्धबोध' 'कातन्त्र और 'सिद्धान्तकौमुदी' आदि अयुक्त ग्रन्थ रच के परमपुनीत ग्रन्थों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्धक हो गये हैं, उन को न वैयाकरण और न हितकारी समझना चाहिये, प्रत्युत अहितकारी हैं। क्योंकि जो व्याकरण का सम्पूर्ण बोध तीन वर्षों में यथार्थ हो सकता है, उस को ऐसा कठिन और अव्यवस्थित किया है कि जिसको पचास वर्ष तक पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को यथार्थ नहीं जान सकते। उन के लिये धन्यवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है।

जो इन ग्रन्थ में सूत्र के आगे अङ्क है, सो इस की सूत्रसंख्या; और अ० संकेत से अष्टाऽध्यायी; एक (१) से अध्याय; दो (२) से पाद; तीन (३) से सूत्रसंख्या समझनी चाहिये।।

।। इति भूमिका ।।

※ ओ३म् ※

अथ स्त्रैणताद्धितः

स्त्रियाम् ।। १ ।। —अ० ४ । १ । ३ ।।

यह अधिकार सूत्र है। इस से आगे जो प्रत्यय विधान करेंगे, सो सब स्त्रीप्रकरण में जानना चाहिये ।। १ ।।

अजाद्यतष्टाप् ।। २ ।। —अ० ४ । १ । ४ ।।

जो स्त्री अभिधेय हो, तो अजादि गणपठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो।

जैसे—अजादि—अजा; एडका; कोकिला; चटका इत्यादि। अदन्त—खट्वा; देवदत्ता; शाला; माला इत्यादि।

अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचन होते हैं, तब सब से टाप् ही हो जाता है। अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में अदन्त कोई शब्द नहीं रहता ।। २ ।।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः ।। ३ ।।
—अ० ७ । ३ । ४४ ।।

आप् परे हो, तो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो अत् उस को इकार आदेश हो, परन्तु जो वह आप् सुप् से परे न हो तो।

जैसे—जटिलिका; मुण्डिका; कारिका; हारिका; पाचिका; पाठिका इत्यादि।

'प्रत्यय' ग्रहण इसलिये है कि—शक्नोतीति शका। 'ककार से पूर्व' इसलिये कहा है कि—नन्दना; रमणा। 'पूर्व को इत्त्व' इसलिये कहा है कि—कटुका, यहां पर को न हुआ। 'अकार को इत्त्व' इसलिये कहा है कि—गोका, यहां न हो। 'तपरकरण' इसलिये है कि—राका; धाका, यहां इत्त्व न हो। 'आप् के परे' इसलिये कहा है कि—कारकः; धारकः; यहां न हो। 'असुप्' इसलिये है कि—बहवः परिव्राजका अस्यामिति बहुपरिव्राजका वाराणसी॥ ३॥

वा०—मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात्॥ ४॥

सुप्रहित आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो।

जैसे—ममेयं मामिका; नरान् कायतीति नारिका॥ ४॥

वा०—प्रत्ययप्रतिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम्[1]॥५॥

सुप्रहित आप् परे हो तो त्यक् और त्यप् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो।

जैसे—दाक्षिणात्यिका; इहत्यिका[2] इत्यादि॥ ५॥

---

१. यह वार्तिक इसलिये कहा है कि (उदीचा०) इस अगले सूत्र से य पूर्व होने से विकल्प करके इत्त्व प्राप्त है, सो नित्य ही हो जावे॥

२. यहां दक्षिणा शब्द से (दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्) इस सूत्र से 'त्यक्' प्रत्यय और इह अव्यय शब्द से (अव्ययात् त्यप्) इस सूत्र करके 'त्यप्' प्रत्यय हुआ है॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ —अ० ७ । ३ । ४५॥

स्त्रीविषय में या और सा इनके ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो।

जैसे—यका; सका। यहां 'यत्; तत्' शब्दों से '**अकच**' प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्त्व का निषेध किया है, वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्त्व न हो।

जैसे—उपत्यका; अधित्यका[1] ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्त्व न हो।

जैसे—हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः; यासु अलोमकाः।

'छन्द' ग्रहण इसलिये है कि—पाविका; अलोमिका, यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्त्व न हो।

जैसे—जीवतात् = जीवका; नन्दतात् = नन्दका; भवतात् = भवका इत्यादि ॥ ९ ॥

---

१. यहां भी य पूर्व के होने से (उदीचा०) इसी अगले सूत्र से विकल्प प्राप्त है, सो निषेध कर दिया ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ।। १० ।।

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्त्व न हो ।

जैसे— देवदत्तिका = देवका ; यज्ञदत्तिका = यज्ञका इत्यादि ।। १० ।।

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ।। ११ ।।

क्षिपका आदि शब्दों में इत्त्व न हो ।

जैसे—क्षिपका ; ध्रुवका इत्यादि ।। ११ ।।

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ।। १२ ।।

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो, वहां उसको इकारादेश न हो ।

जैसे—तारका ।

'ज्योति' ग्रहण इसलिये है कि—तारिका दासी, यहां निषेध न हो ।। १२ ।।

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ।। १३ ।।

तन्तुओं के समुदाय में वर्त्तमान वर्णका शब्द को इत्त्व न हो ।

जैसे—वर्णका प्रावरणभेदः ।

'तान्तव' इसलिये कहा है कि—वर्णिका भागुरी लोकायते, यहाँ न हो ।। १६ ।।

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ।। १४ ।।

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो, वहां उस को इकार आदेश न हो, प्राचीन आचार्यों के मत में ।

जैसे—वर्त्तका शकुनिः । उन्यत्र वर्त्तिका ।

'शकुनि ग्रहण इसलिये है कि—वर्त्तिका भागुरी लौकायतस्य यहां न हो ।। १४ ।।

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ।।१५।।

पितृ और देवताकर्म्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो।

जैसे—अष्टका।

'पितृदैवत्य' इसलिये है कि—अष्टिका खारी, यहां हो जावे ।। १५ ।।

वा०-वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ।।१६।।

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो।

जैसे—सूतिका, सूतका; पुत्रिका, पुत्रका; वृन्दारिका, वृन्दारका ।। १६ ।।

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वाया ।।१७।।

—अ० ७ । ३ । ४६ ।।

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो।

जैसे—यकारपूर्व—इभ्यका, इभ्यिका; क्षत्रियका, क्षत्रियिका। ककारपूर्व—चटकका, चटकिका; मूषकका, मूषकिका।

'आत्' ग्रहण इसलिये है कि—साङ्काश्ये भवा साङ्काशियका, यहां न हो। 'यकपूर्व' ग्रहण इसलिये है कि—अश्विका, यहां विकल्प न हो ।। १७ ।।

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों, ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है, उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है।

जैसे—सुनयिका; सुशयिका; सुपाकिका; अशोकिका इत्यादि ॥१८॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥

—अ० । ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा, एषा, जा, ज्ञा, द्वा, स्वा, ये शब्द नञ् पूर्वक हों, तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

जैसे—भस्त्रका, भस्त्रिका; एषका, एषिका; जका, जिका; ज्ञका, ज्ञिका; द्वके, द्विके; स्वका, स्विका। नञ् पूर्वक—अभस्त्रिका, अभस्त्रका; अजका, अजिका; अज्ञका, अज्ञिका; अस्वका, अस्विका इत्यादि[1] ॥ १९ ॥

अभाषितपुंस्काच्च ॥ २० ॥ —अ० ७ । ४ । ४८ ॥

जो अभाषितपुल्लिंग से परे, आत् के स्थान में अकार, उस को उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इत् आदेश न हो।

---

१. यहां एषा और द्वा इन दो नञ् पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता, कि जो समास की प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है, उसी से परे टाप् होता है, इस कारण सुप्रहितआप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है॥

जैसे—खट्वका, खट्विका; अखट्वका, उखट्विका; परमखट्वका, परमखट्विका इत्यादि ॥ २० ॥

आदाचार्य्याणाम्[1] ॥ २१ ॥ —अ० ७ । ३ । ४९ ॥

आचार्यों के मत में, स्त्री विषय में अभाषितपुंस्क प्रतिपदिकों से परे जो आत् के स्थान में अकार, उस को आत् आदेश हो ।

जैसे—खट्वाका, अखट्वाका; परमखट्वाका इत्यादि ॥२१॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥ २२ ॥ अ० ४ । १ । ५ ॥

स्त्रीविषय में ऋकरान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप्, प्रत्यय हो ।

जैसे—ऋकारान्त—कर्त्री; हर्त्री; पक्त्री इत्यादि। नकारान्त—हस्तिनी; मालिनी; दण्डिनी; क्षत्रिणी इत्यादि ॥ २२ ॥

उगितश्च ॥ २३ ॥ अ० —४ । १ । ६ ॥

स्त्रीविषय में जो उगित् शब्द रूप है, उस से और तदन्त प्रातिपदिकों से भी ङीप् प्रत्यय हो ।

जैसे—भवती; अतिभवती; पचन्ती; यजन्ती इत्यादि ॥२३॥

वा०—धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक् जिस का इत् गया हो, ऐसे क्विप् आदि अविद्यमान प्रत्ययान्त धातु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो ।

---

१. यहां आचार्य्य शब्द के बहुवचन निर्देश से पाणिनि आचार्य्य का मत समझना चाहिये ॥

जैसे—उखास्रत्; पर्णध्वत्[1] ब्राह्मणी ।। २४ ।।

वा०—अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम् ।। २५ ।।

उगित् धातु से जो ङीप् का निषेध किया है, वहां **अञ्चु** का उपसङ्ख्यान, अर्थात् उससे ङीप् का निषेध न हो ।

जैसे—प्राची; प्रतीची; उदीची ।। २५ ।।

वनो र च ।। २६ ।। —अ० ४ । १ । ७ ।।

स्त्रीलिंग से वन्नन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो, और उस वन्नन्त को रेफ आदेश हो जावे ।

जैसे—धीवरी; पीवरी; शर्वरी इत्यादि ।। २६ ।।

वा०—वनो न हशः ।। २७ ।।

हश् प्रत्याहार से परे जो वन् तदन्त से ङीप् न हो ।

जैसे—सहयुध्वा[2] ब्राह्मणी ।। २७ ।।

पादोऽन्यतरस्याम् ।। २८ ।। —अ० ४ । १ । ८ ।।

स्त्री अर्थ में पादशब्दान्त पातिपदिकों से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो ।

जैसे—द्विपदी, द्विपाद्; त्रिपदी, त्रिपाद्; चतुष्पदी, चतुष्पाद् इत्यादि ।। २८ ।।

---

१. यहां स्रंसु और ध्वंसु धातु से क्विप् प्रत्यय के परे सकार को पदान्त में दकार (वसुस्रंसुध्वंस्व०) इससे दकारादेश हो गया है ।

२. यहां सह उपपद युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय (सहे च) इस सूत्र से हुआ है, और हश् प्रत्याहार में धकार से परे वन् है ।

टाबृचि ।। २९ ।। —अ० ४ । १ । ९ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऋग्वेदविषयक पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो ।

जैसे—द्विपदा ऋक्; त्रिपदा ऋक्; चतुष्पदा ऋक् ।

'ऋक्' ग्रहण इसलिये है कि—द्विपदी वृषली, यहां टाप् न हो ।। २९ ।।

न षट्स्वस्रादिभ्यः ।। ३० ।। —अ० ४ । १ । १० ।।

षट्संज्ञक और स्वसृ आदि गणपठित प्रातिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय न हो ।

जैसे—पञ्च ब्राह्मण्य; सप्त नव दश वा । स्वसा; दुहिता; ननान्दा; याता; माता; तिस्रः; चतस्रः इत्यादि ।

यहां ऋकारान्त शब्दों से ङीप् और पञ्च आदि षट्संज्ञकों के अन्त्य नकार का लोप होके अदन्तों से टाप् प्रत्यय प्राप्त है, सो दोनों का निषेध समझना चाहिये ।। ३० ।।

मनः ।। ३१ ।। —अ० ४ । १ । ११ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे—दामा, दामानौ, दामानः; पामा, पामानौ, पामानः; सीमा, सीमानौ, सीमानः; अतिमहिमा, अतिमहिमानौ, अतिमहिमानः इत्यादि ।। ३१ ।।

अनो बहुव्रीहेः ।। ३२ ।। —अ० ४ । १ । १२ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अन्नन्त बहुव्रीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे—सुपर्वा, सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः; सुशर्म्मा, सुशर्माणौ, सुशर्म्माणः इत्यादि ।

'बहुव्रीहि, ग्रहण इसलिये है कि—अतिक्रान्ता राजानमतिराज्ञी, यहां एकविभक्तिसमास में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥३३॥ —अ० ४ । १ । १३॥

जो मन्नन्त प्रातिपदिक और अन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकान्त बहुव्रीहिसमास हो, तो उनसे स्त्रीलिंग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय हो जाय ।

जैसे—मन्नन्त—पामा, पामे, पामाः; सीमा, सीमे, सीमाः । पक्ष में—पामा, पामानौ, पामानः; सीमा, सीमानौ, सीमानः । अन्नन्त बहुव्रीहिसमास—बहवो राजानोऽस्यां नगर्य्यां सा बहुराजा नगरी, बहुराजे नगर्य्यौ, बहुराजा नगर्य्यः; बहुतक्षा, बहुतक्षे, बहुतक्षाः । पक्ष में—बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः; बहुतक्षा, बहुतक्षाणौ, बहुतक्षाणः ।

यहां 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण इसलिये है कि—(वनो र च) इस सूत्र के विषय में भी विकल्प हो जावे । जैसे—बहुधीवा, बहुधीवरी; बहुपीवा, बहुपीवरी इत्यादि ॥ ३३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ ३४ ॥ —अ० ४ । १ । १४ ॥

यहां से आगे जिस जिस प्रत्यय का विधान करेंगे, सो सो अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में, मुख्य प्रातिपदिकों ही से होंगे । इसलिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ३४ ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥३५॥
—अ० ४ । १ । १५ ॥

यहां अदन्त की अनुवृत्ति सर्वत्र चली आती है । परन्तु जहां सम्भव होता है वहां विशेषण किया जाता है ।

ढ, आण, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, टक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन, और अदन्त अनुपसर्जन टित् प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—टित्—कुरुचरी; मद्रचरी। ढ—आग्नेयी; सौपर्णेयी; वैनतेयी। अण्—औपगवी; कुम्भकारी; नगरकारी। अञ्—औत्सी; औदपानी। द्वयसच्—उरुद्वयसी; जानुद्वयसी। दघ्नच्—ऊरुदघ्नी; जानुदघ्नी। मात्रच्—ऊरुमात्री; जानुमात्री। तयप्—द्वितीय; चतुष्टयी; पंचतयी। ठक्—आक्षिकी; शालाकिकी। ठञ्—लावणिकी। कञ्—यादृशी; तादृशी। क्वरप्—इत्वरी; नश्वरी।

यहां 'अनुपसर्जन' ग्रहण इसलिये है कि—बहुकुरुचरा; बहुमद्रचरा मथुरा इत्यादि से ङीप् न हो। यहां टित् आदि अदन्त शब्दों से टाप् प्राप्त है, इसलिये उसका अपवाद यह सूत्र समझना चाहिये॥ ३५॥

वा०—नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम् ॥३६॥

नञ् स्नञ् ईकक् ख्युन् इन प्रत्ययान्त शब्दों, और तरुण तलुन शब्दों से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—नञ्—स्त्रैणी; स्नञ्—पौंस्नी; ईकक्—शाक्तिकी, याष्टिकी; ख्युन्—आढ्यङ्करणी, सुभगङ्करणी; तरुणी; तलुनी इत्यादि।

यहां भी तदन्त प्रातिपदिकों से टाप् ही प्राप्त है, उसका अपवाद यह भी वार्तिक है॥ ३६॥

यञश्च ॥३७॥ —अ०। ४। १। १६॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—गार्गी; वात्सी इत्यादि। यहां गर्ग और वत्स शब्दों से यञ् प्रत्यय हुआ है॥ ३७॥

वा०—अपत्यग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥३८॥

जिस यञ् प्रत्यय का पूर्व सूत्र में ग्रहण है, वह अपत्याधिकार का यञ् समझना। क्योंकि द्वैप्याः सिकताः[1] इत्यादि, यहां ङीप् न हो जावे ॥ ३८ ॥

प्राचां ष्फस्तद्धितः ॥३९॥ —अ० ४। १। १७॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्राचीन आचार्यों के मत में तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—गार्ग्यायणी; वात्स्यायनी।[2] औरों के मत में—गार्गी; वात्सी ॥ ३९ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥४०॥

—अ० ४। १। १८॥

जो लोहित आदि कत पर्यन्त गर्गादिगणपठित अकारान्त शब्द हैं, उन से तद्धिक संज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है। जैसे—लोहितादि—लौहित्यायनी; शांशित्यायनी; वाभ्रव्यायणी। कतन्त—कात्यायनी इत्यादि ॥ ४० ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्याञ्च ॥४१॥ —अ० ४। १। १९॥

कौरव्य और माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—कौरव्यायणी; माण्डूकायनी इत्यादि ॥ ४१ ॥

वा०—आसुरेरुपसङ्ख्यानम् ॥४२॥

आसुरि शब्द से भी तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—आसुरायणी।

---

१ यहां शैषिक यञ् प्रत्यय (द्वीपादनुसमुद्रं यञ्) इससे हुआ है, इसलिये ङीप् न हुआ, उत्सर्ग टाप् हो गया ॥

२. यहां ष्फ प्रत्यय के षित् होने से तदन्त से ङीप् प्रत्यय हो जाता है ॥

यहां आसुरि शब्द में अपत्यसंज्ञक इञ् प्रत्यय हुआ है। पूर्व (प्राचां ष्फ०) इस सूत्र में 'तद्धित' ग्रहण का प्रयोजन भी यही है कि आसुरि शब्द के इकार का लोप हो जावे ॥ ४२ ॥

वयसि प्रथमे ॥४३॥ —अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम अवस्था विदित होती हो, तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—कुमारी; किशोरी; कलभी; वर्क्करी।

यहां 'प्रथम अवस्था' ग्रहण इसलिये है कि—स्थविरा; वृद्धा इत्यादि से ङीप् न हो। 'अकारान्त' से इसलिये कहा है कि—शिशुः, यहां ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥४४॥

सूत्र से प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है, वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था को छोड़ के कहना चाहिये। जैसे—बधूटी; चिरण्टी। ये प्राप्तयौवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं। प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी ॥ ४४ ॥

द्विगोः ॥४५॥ —अ० ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान द्विगुसंज्ञक अदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—पञ्चमूली; दशमूली; अष्टाध्यायी इत्यादि।

यहां 'अत्' ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चबलिः, यहां ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥४६॥
—अ० ४ । १ । २२ ॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो, वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त विस्तान्त आचितान्त और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा, दशाश्वा, द्विवर्षा, त्रिवर्षा, द्विशता, त्रिशता; द्विविस्ता, त्रिविस्ता; द्व्याचिता, त्र्याचिता; द्विकम्बल्या, त्रिकम्बल्या।

यहां 'अपरिमाण' ग्रहण इसलिये है कि—द्व्याढकी, त्र्याढकी, यहां निषेध न हो। 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि—पञ्चाश्वी, यहां भी होजावे ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥४७॥ —अ० ४। १। २३॥

तद्धित का लुक् हुआ हो, तो क्षेत्रवाची स्त्रीलिंग में वर्त्तमान काण्ड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा।

'क्षेत्र' इसलिये कहा है कि—द्विकाण्डी रज्जुः, यहां निषेध न हो। 'काण्ड' शब्द के अपरिमाणवाची होने से पूर्वसूत्र से ही निषेध हो जाता, फिर क्षेत्रग्रहण नियमार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥४८॥

—अ० ४। १। २४॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषा, द्विपुरुषी; त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी।[1]

---

१. यहां अपरिमाणान्त पुरुष शब्द से नित्य ही निषेध प्राप्त है, इसलिये यह अप्राप्त विभाषा समझनी चाहिये ॥

यहां 'प्रमाण' ग्रहण इसलिये है कि—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा; त्रिपुरुषा, यहां विकल्प करके ङीप् न हो। और 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि—द्विपुरुषी; त्रिपुरुषी, यहां समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीप् ॥४९॥ —अ० ४। १। २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—घट इव ऊधो यस्याः सा घटोध्नी; कुण्डोध्नी[1]।

यहां 'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः, यहां न हुआ ॥ ४९ ॥

सङ्ख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥५०॥ —अ० ४। १। २६ ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हों, ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उस से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—संख्या—द्व्यूध्नी; त्र्यूध्नी। अव्यय—अत्यूध्नी; निरूध्नी।

यहां 'आदि' ग्रहण से द्विविधोध्नी, त्रिविधोध्नी इत्यादि से भी ङीप् हो जाता है ॥ ५० ॥

---

१. ऊधस् गाय आदि के ऐन को कहते हैं, कि जो दूध का स्थान है। इस ऊधस् शब्द से जब समासान्त 'नङ्' प्रत्यय होने से अन्नन्त हो जाता है, तब (अनो बहु०) इस पूर्वलिखित सूत्र से डाप् और निषेध प्राप्त होता है, उसका यह अपवाद है ॥

दामहायनान्ताच्च ॥५१॥ —अ० ४ । १ । २७ ॥

संख्या जिस के आदि में, दामन् तथा हायन अन्त में हों, ऐसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे—द्वे दाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी बड़वा; त्रिदाम्नी । द्विहायनी; त्रिहायणी चतुर्हायणी[1] इत्यादि ।

(क्वचिदेकदेशो०) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां अव्यय की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ५१ ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥५२॥

—अ० ४ । १ । २८ ॥

जो अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उससे स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—बहुराजा, बहुराज्ञी, बहुराजे; बहुतक्षा, बहुतक्ष्णी, बहुतक्षे[2] ।

'अन्नन्त' ग्रहण इसलिये है कि—बहुमत्स्या, यहां ङीप् न हो । और 'उपधालोपी' इसलिये है कि—सुपर्वा, सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः इत्यादि में न हो ॥ ५२ ॥

---

१. यहां हायन शब्द अवस्था अर्थ में समझना चाहिये, सो चेतन के साथ सम्बन्ध रखती है, इसलिये द्विहायना शाला इत्यादि में ङीप् नहीं होता ॥

२. यहां अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से पक्ष में (डाबुभाभ्या०) इस उक्त सूत्र से डाप् प्रत्यय विकल्प करके हो जाता है । इन दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग हो जाते हैं ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ।।५३।। —अ० ४ । १ । २९ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय नित्य ही होवे। जैसे—संज्ञा में—सुराज्ञी; अतिराज्ञी नाम ग्रामः। छन्द में—गोः पञ्चदाम्नी; द्विदाम्नी; एकदाम्नी; एकमूर्ध्नी; समानमूर्ध्नी।

पूर्वसूत्र में जो विकल्प है, उसके नित्यविधान के लिये यह अपवाद सूत्र है। जहां संज्ञा और वैदिकप्रयोग न होवें, वहां ङीप् न होगा। जैसे—सुराजा इत्यादि ।। ५३ ।।

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च ।।५४।। —अ० ४ । १ । ३० ।।

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल मामक भागधेय पाप अपर समान आर्यकृत सुमङ्गल और भेषज शब्द हों, तो इन प्रातिपदिकों से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—केवली; मामकी; मित्रावरुणयोर्भागधेयी; पापी; उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये; समानी; आर्य्यकृती; सुमङ्गली; भेषजी।

जहां संज्ञा और वेदविषय न हों, वहां टाप् होकर केवला इत्यादि प्रयोग होंगे ।। ५४ ।।

रात्रेश्चाजसौ ।।५५।। —अ० ४ । १ । ३१ ।।

जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान रात्रि शब्द से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—या रात्री सृष्टा; रात्रीभिः।

'जस् में निषेध' इसलिये है कि—यास्ता रात्रयः, यहां ङीप् न होवे ।। ५५ ।।

वा०--अजसादिष्विति वक्तव्यम् ।।५६।।

केवल जस् के परे जो ङीप् का निषेध किया है, सो जस् आदि के परे निषेध करना चाहिये। जैसे—रात्रि सहोषित्वा इत्यादि से भी ङीप् न होवे ।। ५६ ।।

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ।।५७।। —अ० ४। १। ३२ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगों में अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् और नुक् का आगम भी हो ।। ५७ ।।

का०--अन्तर्वत्पतिवतोस्तु मतुब्वत्वे निपातनात् ।
गर्भिण्यां जीवत्पत्यां च वा छन्दसि तु नुग्भवेत्
।।५८।।

अन्तर्वत् शब्द में मतुप् और पतिवत् शब्द में मतुप् के मकार को वकारादेश निपातन किया है। तथा अन्तर्वत् शब्द से गर्भिणी अर्थ में, और पतिवत् शब्द से जिस का पति जीता हो, वहां वैदिक प्रयोग विषय में विकल्प करके नुक् और ङीप् नित्य ही होवे। जैसे—सान्तर्वत्नी देवानुपैत्, सान्तर्वती देवानुपैत्; पतिपत्नी तरुणवत्सा, पतिवती तरुणवत्सा ।। ५८ ।।

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ।।५९।। —अ० ४। १। ३३ ।।

जो यज्ञ का संयोग हो, तो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पति शब्द को नकारादेश और ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—यजमानस्य पत्नी; पत्नि वाचं यच्छ।

यहां 'यज्ञसंयोग' इसलिये कहा है कि—ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी, यहां न हो ।। ५९ ।।

विभाषा सपूर्वस्य[1] ॥६०॥ —अ० ४ । १ । ३४ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पूर्वपद सहित पति शब्द हो, तो उस को नकारादेश विकल्प करके हो । ङीप् तो नकारान्त के होने से सिद्ध ही है । जैसे—वृद्धपतिः, वृद्धपत्नी; स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी; जीवपतिः, जीवपत्नी ।

यहां 'सपूर्व' ग्रहण इसलिये है कि—पतिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य, यहां ङीप् न हुआ ॥ ६० ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥६१॥ —अ० ४ । १ । ३५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सपत्नी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निपातन किया है । जैसे—समानः पतिरस्याः सा सपत्नी; एकपत्नी; वीरपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

पूतक्रतोरैच् ॥६२॥ —अ० ४ । १ । ३६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पूतक्रतु शब्द से ङीप् और उस को ऐकारादेश भी होवे । जैसे—पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी ।

यहां से लेके तीन सूत्रों में जो प्रत्ययविधान है, सो पुंयोग अर्थात् उस स्त्री के साथ पुरुषसम्बन्ध की विवक्षा हो तो होवे । जैसे—यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति, यहां पुंयोग की विवक्षा नहीं, इस से ङीप् न हुआ ॥ ६२ ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥६३॥

—अ० ४ । १ । ३७ ॥

---

१. यह अप्राप्तविभाषा इसलिये समझनी चाहिये कि यज्ञसंयोग की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती, अन्य किसी से नुक् पाता नहीं ॥

स्त्रीलिङ्ग और पुरुष के योग में वृषाकपि अग्नि कुसित और कुसीद शब्दों को ऐकारादेश, और इन से ङीप् प्रत्यय हो, और वह ङीप् प्रत्यय उदात्त भी होवे। जैसे—वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी; अग्नेः स्त्री अग्नायी; कुसितस्य स्त्री कुसितायी; कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी ।

यहां 'पुंयोग' इसलिये है कि—वृषाकपिः स्त्री इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३ ॥

मनोरौ वा[1] ॥६४॥ —अ० ४ । १ । ३८ ॥

पुंयोग में और स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनु प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे, और मनु शब्द को 'औकार' और पक्ष में ऐकारादेश हो, और वह उदात्त भी हो जावे। जैसे—मनोः स्त्री मनायी, मनावी, मनुः, ये तीन प्रयोग होते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥६५॥

—अ० ४ । १ । ३९ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वर्णवाची अनुदात्त तकारोपध प्रातिपदिक हैं, उन से विकल्प करके ङीप्, और उन के तकार को नकारादेश भी होवे। जैसे—एता, एनी; श्येता, श्येनी; हरिता, हरिणी ।

यहां 'वर्णवाची से' इसलिये कहा है कि—प्रहृता, यहां ङीप् और नकार न होवे। 'अनुदात्त' इसलिये है कि—श्वेता, यहां

१. यह अप्राप्तविभाषा इस प्रकार है कि जो कार्य्य इस सूत्र से होते हैं, वे किसी से प्राप्त नहीं ॥

न हो। 'तोपध' इसलिये है कि—अन्य प्रातिपदिक से ङीप् न हो। अदन्त की अनुवृत्ति इसलिये आती है कि—शितिर्ब्राह्मणी, यहां न हो।। ६५ ।।

वा०—पिशङ्गादुपसङ्ख्यानम् ।। ६६ ।।

पिशङ्ग शब्द तोपध नहीं है, इस कारण ङीप् नहीं पाता था, इसलिये इसका उपसङ्ख्यान है। पिशङ्ग शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होवे। जैसे—पिशङ्गी ।। ६६ ।।

वा०—असितपलितयोः प्रतिषेधः ।। ६७ ।।

असित और पलित प्रातिपदिकों से ङीप् और इनके तकार को नकारादेश न होवे। सूत्र से पाया था, उस का निषेधरूप यह अपवाद है। जैसे—असिता; पलिता ।। ६७ ।।

वा०—छन्दसि क्नमेके ।। ६८ ।।

वेद में असित और पलित शब्द के तकार के स्थान में क्नम् आदेश और ङीप् प्रत्यय हो, ऐसी इच्छा कोई आचार्य करते हैं। जैसे—असिक्नी; पलिक्नी ।। ६८ ।।

अन्यतो ङीष् ।। ६९ ।। —अ० ४। १। ४० ।।

तोपध से भिन्न अनुदात्त वर्णवाची अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—सारङ्गी; कल्माषी; शवली इत्यादि।

यहां 'अनुदात्त' ग्रहण इसलिये है कि—कृष्णा; कपिल इत्यादि से न हो।। ६९ ।।

षिद्गौरादिभ्यश्च ।। ७० ।। —अ० ४ । १ । ४१ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त षित् और गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—नर्तकी; खनकी; रजकी । गौरी; मत्सी; शृङ्गी इत्यादि ।। ७० ।।

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ।।७१।। —अ० ४ । १ । ४२ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त जानपद आदि (११) ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि ग्यारह (११) अर्थों में यथासंख्य करके ङीष् प्रत्यय होवे ।

जैसे—जानपदी वृत्ति; जानपदी रीतिः (यहां ङीष् होने से स्वर में भेद हो जाता है) । कुण्डी (अमत्रपात्रम्) अन्यत्र कुण्डा । गोणी (आवपन अर्थात् माप हो तो) अन्यत्र गोणा । स्थली (अकृत्रिमा भूमिः) अन्यत्र स्थला । भाजी (श्राणा = पकाने के योग्य शाक) अन्यत्र भाजा । नागी (स्थौल्यम् = अति मोटी हो तो) अन्यत्र नागा । काली (जो वर्ण हो) अन्यत्र काला । नीली (जो वस्त्र हो) नहीं तो नीला शाटी । कुशी (जो लोहे का कुछ विकार हो) नहीं तो कुशा । कामुकी (जो मैथुन की इच्छा रखती हो) नहीं तो कामुका । कबरी (जो बालों का सम्हालना हो) नहीं तो कबरा ।। ७१ ।।

वा०—नीलादोषधौ ।।७२।।

नील शब्द से ओषधि अर्थ में भी ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—नीली ओषधिः ।। ७२ ।।

वा०—प्राणिनि च ।।७३।।

प्राणी अर्थ में भी नील शब्द से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—नीली गौः; नीली बडवा; नीली गवयी इत्यादि ।। ७३ ।।

वा०—वा संज्ञायाम् ।।७४।।

संज्ञा अर्थ में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो । जैसे—नीली, नीला इत्यादि ।। ७४ ।।

शोणात्प्राचाम् ।।७५।। —अ० । ४ । १ । ४३ ।।

प्राचीन आचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान शोण प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे, अन्य आचार्य्यों के मत में नहीं । जैसे—शोणी, शोणा बडवा ।। ७५ ।।

वोतो गुणवचनात् ।।७६।। —अ० ४ । १ । ४४ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो जावे । जैसे—पट्वी, पटुः; मृद्वी, मृदुः इत्यादि ।

'उत्' ग्रहण इसलिये है कि—'शुचिः' यहां ङीष् न हो । 'गुणवचन' ग्रहण इसलिये है कि—आखुः, यहाँ न हो ।। ७६ ।।

वा०—गुणवचनान्ङीबाद्युदात्तार्थम् ।।७७।।

गुणवचन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये, क्योंकि ङीष् के होने से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है, सो आद्युदात्त होवे । जैसे—वस्वी; तन्वी इत्यादि ।

यह विधान सर्वत्र नहीं, किन्तु जहाँ आद्युदात्त प्रयोग आवे वहीं ।। ७७ ।।

वा०—खरुसंयोगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥

खरु और संयोग जिस की उपधा में हो, ऐसे गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय न हो । जैसे—खरुरियं ब्राह्मणी; पाण्डुरियं ब्राह्मणी इत्यादि ॥ ७८ ॥

बह्वादिभ्यश्च ॥७९॥ —अ० ४ । १ । ४५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे—बह्वी, बहुः; पद्धती, पद्धतिः; अङ्कती, अङ्कतिः इत्यादि ॥ ७९ ॥

नित्यं छन्दसि ॥८०॥ —अ० ४ । १ । ४६ ॥

वेद में बहु आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय नित्य ही हो । जैसे—बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् । बह्वी नाम ओषधी भवति ॥ ८० ॥

भुवश्च ॥८१॥ —अ० ४ । १ । ४७ ॥

वेद में भू प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो । जैसे—विभ्वी च; प्रभ्वी च; सुभ्वी च इत्यादि ॥ ८१ ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥८२॥ —अ० ४ । १ । ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुरुष के योग के कहने में प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो । जैसे—गणकस्य स्त्री गणकी; महामात्री; प्रष्ठी; प्रचरी इत्यादि ।

यहाँ 'पुंयोग' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्ता, यहाँ ङीष् न हो ॥ ८२ ॥

वा०—गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥८३॥

पुंयोग के कथन में गोपालिका आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे—गोपालकस्य स्त्री गोपालिका; पशुपालिका इत्यादि ॥ ८३ ॥

वा०—सूर्य्याद्देवतायां चाब् वक्तव्यः ॥८४॥

सूर्य्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय हो। जैसे—सूर्य्यस्य स्त्री देवता सूर्य्या।

यहाँ 'देवता' ग्रहण इसलिये है कि—सूरी, यहाँ न हो ॥८४॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाऽऽ-चार्य्याणामानुक् ॥८५॥ —अ० ४। १। ४९॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इन्द्रादि बारह (१२) प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय, और इन्द्र आदि शब्दों को आनुक् का आगम भी हो। जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी; वरुणानी; भवानी; शर्वाणी; रुद्राणी; मृडानी[1] ॥ ८५ ॥

वा०—हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥८६॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से महत्त्व अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो। जैसे—महद्धिमं हिमानी; महदरण्यमरण्यानी ॥ ८६ ॥

---

१. यहां इन्द्रादि शब्दों से पुंयोग में ङीष् प्रत्यय तो पूर्व सूत्र से प्राप्त ही है, केवल आनुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है। सो सूत्र से सामान्य अर्थ में कार्य्य विधान है, इसलिये हिम आदि छः शब्दों से विशेष अर्थों में वार्तिकों से विधान किया है ॥

वा०—यवाद्दोषे ।।८७।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यव प्रातिपदिक से दुष्टता अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो । जैसे—दुष्टो यवो यवानी ।।८७।।

वा०—यवनाल्लिप्याम् ।।८८।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवे । जैसे—यवनानी लिपिः ।। ८८ ।।

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां[१] वा ।।८९।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उपाध्याय और मातुल प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवे । जैसे—उपाध्यायानी, उपाध्यायी; मातुलानी, मातुली ।। ८९ ।।

वा०—आचार्य्यादणत्वं च ।।९०।।

यहां पूर्व वार्त्तिक से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान आचार्य्य प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम भी विकल्प करके होवे, और आनुक् के नकार को णत्व प्राप्त है सो न हो । जैसे—आचार्य्यानी, आचार्य्या । यहां पक्ष में टाप् प्रत्यय हो जाता है ।। ९० ।।

वा०—अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा[२] ।।९१।।

---

१. इस वार्तिक में उपाध्याय शब्द से अपूर्व विधान और मातुल शब्द तो सूत्र में पढ़ा ही है ।।

२. यहां से लेके दोनों वार्तिक अपूर्व विधायक इसलिये हैं कि अर्य्यादि शब्द सूत्र में नहीं पढ़े हैं ।।

यहां फिर विकल्प ग्रहण इसलिये है कि णत्व की अनुवृत्ति न आवे।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अर्य्य और क्षत्रिय प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—अर्य्याणी, अर्य्या; क्षत्रियाणी, क्षत्रिया ॥९१॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥९२॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मुद्गल प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो, और ङीष् प्रत्यय लित् भी हो जावे। जैसे—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्ठी ॥९२॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥९३॥ —अ० ४। १। ५०॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—वस्त्रेण क्रीता सा वस्त्रक्रीती; वसनक्रीती; रथक्रीती इत्यादि।

यहां 'करण' कारक का ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तक्रीता, इत्यादि से ङीष् न हो ॥ ९६ ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥९४॥ —अ० ४। १। ५१॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अल्पाख्या अर्थ में करणकारक जिस के पूर्व हो ऐसे क्तान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—अभ्रविलिप्ती द्यौः; सूपविलिप्ती स्थाली इत्यादि।

यहां 'अल्पाख्या' ग्रहण इसलिये है कि—चन्दनाऽनुलिप्ता ब्राह्मणी, इत्यादि से ङीष् न होवे ॥ ९४ ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ।।९५।। अ० —४ । १ । ५२ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त क्तान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—शंखो भिन्नो यया सा शंखभिन्नी; ऊरुभिन्नी; गलोत्कृत्ती; केशलूनी इत्यादि।

यहां 'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—पद्भ्यां पतिता पादपतिता, यहां ङीष् प्रत्यय न होवे ।। ९५ ।।

वा०—अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेधः ।।९६।।

अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से जो ङीष् कहा है, सो जात शब्द जिस के अन्त में उस प्रातिपदिक से न हो। यह वार्त्तिक सूत्र का निषेधरूप अपवाद है। जैसे—दन्तजाता; रतनजाता इत्यादि ।। ९६ ।।

वा०—पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ।।९७।।

विशेष अर्थात् जहां वेदोक्तरीति से पाणिग्रहण अर्थात् विवाह किया जावे, वहां पाणिगृहीती आदि शब्दों में ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—पाणिगृहीती भार्य्या।

और जहां किसी प्रकार पाणिग्रहण कर लेवे वहां पाणिगृहीता टाबन्त ही प्रयोग होवे ।। ९७ ।।

वा०—अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ।।९८।।

सूत्र ९५ में जो अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् कहा है, सो यदि बहु नञ् सुकाल और सुखादि शब्द पूर्व हों तो न हो। जैसे—बहु—बहुकृता। नञ्—अकृता। सु-सुकृता। काल-मासजाता; संवत्सरजाता। सुखादि-सुखजाता; दुःखजाता इत्यादि ।। ९८ ।।

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ।। ९९ ।। —अ० ४ । १ । ५३ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान स्वांग पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि समासयुक्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—शार्ङ्गजग्धी, शार्ङ्गजग्धा; पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डु-भक्षिता; सुरापीति, सुरपीता ।

यहां 'अस्वांग' 'पूर्वपद' इसलिये है कि—दन्तभिन्नी, यहां विकल्प न हो । और 'अन्तोदात्त' इसलिये है कि—वस्त्रछन्ना, यहाँ ङीष् न हो ।। ९९ ।।

वा०—बहुलं संज्ञाछन्दसोः ।।१००।।

संज्ञा और वैदिकप्रयोग विषय में वर्त्तमान क्तप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से बहुल करके ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—प्रवृद्धविलूनी, प्रवृद्धविलूना । प्रवृद्धा चासौ विलूना चेति नायं बहुव्रीहिः । यहां बहुव्रीहि समास नहीं किन्तु कर्मधारय है ।। १०० ।।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।।१०१।।

—अ० ४ । १ । ५४ ।।

यहाँ बहुव्रीहि अन्तोदात्त क्तान्त ये तीन पद तो छूट गये, परन्तु एक विकल्प की अनुवृत्ति आती है ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जिस के स्वाङ्गवाची उपसर्जन संयोगोपध से भिन्न प्रातिपदिक अन्त में हो उस से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; अतिक्रान्ता केशान-तिकेशी, अतिकेशा माला ।

यहां 'स्वाङ्ग' ग्रहण इसलिये है कि—बहुयवा[1]। 'उपसर्जन' इसलिये है कि—अशिखा। और 'असंयोगोपध' ग्रहण इसलिये है कि—सुगुल्फा; सुपार्श्वा, यहां ङीष् न हुआ ॥१०१॥

वा०—अङ्गगात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥१०२॥

पूर्व सूत्र से संयोगोपध के निषेध से अङ्ग आदि का निषेध प्राप्त है, उस का अपवादविधायक यह वार्त्तिक है।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो स्वाङ्गवाची उपसर्जन अंग गात्र और कण्ठ प्रातिपदिक हैं, उनसे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—मृद्वंगी, मृद्वंगा; सुगात्री, सुगात्रा; स्निग्धकण्ठी, स्निग्धकण्ठा इत्यादि ॥१०२॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च[2] ॥१०३॥

—अ० ४। १। ५५॥

विकल्प की अनुवृत्ति यहाँ भी आती है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में जिस के अन्त में स्वाङ्गसंज्ञक उपसर्जन अर्थात् अप्रधानार्थवाची नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण वा शृङ्ग शब्द हो, उस प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

---

१. यहां स्वांग उस को कहते हैं कि जिस समासान्त समुदाय प्रातिपदिक से प्रत्ययविधान हो उस के वाच्य अर्थ का जो शरीरावयव होवे। जैसे—बिम्बोष्ठी, बिम्ब के समान जिस के ओष्ठ हों। यहां ओष्ठ स्वांग है, इसका विशेष व्याख्यान महाभाष्य में है॥

२. इस सूत्र में नासिका और उदर दो शब्दों से तो बह्वच् के होने से अगले सूत्र से ङीष् का निषेध प्राप्त और ओष्ठ आदि शब्दों से संयोगोपध के होने से ङीष् का निषेध पाता है, उन दोनों का विधायक यह अपवाद सूत्र है॥

जैसे—तुंगनासिकी, तुंगनासिका; कृशोदरी, कृशोदरा; बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा; दीर्घजंघी, दीर्घजंघा; समदन्ती, समदन्ता; चारुकर्णी, चारुकर्णा; तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा इत्यादि ॥१०३॥

वा०—पुच्छाच्च ॥१०४॥

पुच्छ शब्द भी संयोगोपध स्वांगवाची है, इस कारण निषेध का बाधक यह वार्त्तिक है। पुच्छान्त स्वांगवाची प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—कल्याणपुच्छी, कल्याणपुच्छा ॥१४०॥

वा०—कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥१०५॥

कबर मणि विष और शर शब्दों से परे जो स्वांगवाची पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—कबरपुच्छी; मणिपुच्छी; विषपुच्छी; शरपुच्छी इत्यादि ॥१०५॥

वा०—उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥१०६॥

उपमानवाची शब्दों से परे जो स्वांगवाची पक्ष और पुच्छ प्रातिपदिक उन से नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—उलूकपक्षी सेना; उलूकपुच्छी शाला इत्यादि ॥१०६॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥१०७॥ —अ० ४। १। ५६॥

क्रोड आदि प्रातिपदिक और बहुत अच् जिस में हों, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न होवे। जैसे—कल्याणक्रोडा; कल्याणखुरा; कल्याणबाला; कल्याणशफा। बह्वच्—पृथुजघना; महाललाटा इत्यादि ॥१०७॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ।।१०८।। —अ० ४ । १ । ५७ ।।

सह नञ् विद्यमान ये हों पूर्व जिसके, उस स्वांगवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे—सकेशा; अकेशा; विद्यमानकेशा; सनासिका; अनासिका; विद्यमाननासिका इत्यादि ।।१०८।।

नखमुखात्संज्ञायाम् ।।१०९।। —अ० ४ । १ । ५८ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान नखान्त और मुखान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे—शूर्पणखा; वज्रणखा; गौरमुखा; कालमुखा।

'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—ताम्रमुखी कन्या, यहां ङीष् हो ।।१०९।।

दीर्घजिह्वी च छन्दसि ।।११०।। —अ० ४ । १ । ५९ ।।

वेद में 'दीर्घजिह्वी' निपातन किया है। जैसे—दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्। 'दीर्घजिह्वी' शब्द नित्य ङीष् होने के लिये निपातन किया है ।।११०।।

दिक्पूर्वपदान्ङीप् ।।१११।। —अ० ४ । १ । ६० ।।

दिक् पूर्वपद हो जिस के उस स्वांगवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—प्राङ्मुखी; प्रत्यङ्मुखी; प्राङ्नासिकी इत्यादि ।।११।।

वाहः ।।११२।। —अ० ४ । १ । ६१ ।।

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—दित्यौही; प्रष्ठौही; विश्वौही इत्यादि ।।११२।।

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ।।११३।।

—अ० ४ । १ । ६२ ।।

भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में सखी और अशिश्वी ये दोनों ङीष् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं। जैसे—सखीयं मे ब्राह्मणी; नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी।

यहां 'भाषा' ग्रहण इसलिये है कि—सखे सप्तपदी भव, यहां न हो ।।११३।।

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।।११४।।

—अ० ४ । १ । ६३ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जो यकारोपधवर्जित जातिवाची अकारान्त और नियत स्त्रीलिङ्ग न हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—कुक्कुटी; सूकरी; ब्राह्मणी; वृषली; नाडायनी; चारायणी; बह्वृची।

यहां 'जाति' ग्रहण इसलिये है कि—मुण्डा। 'अस्त्रीविषय' इसलिये है कि—मक्षिका। 'अयोपध' इसलिये है कि—क्षत्रिया; वैश्या। 'अनुपसर्जन' ग्रहण इसलिये है कि—बहुकुक्कुटा; बहुसूकरा, इससे ङीष् न हुआ ।।११४।।

वा०—योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणाम-प्रतिषेधः ।।११५।।

यकारोपध का निषेध जो सूत्र से किया है, वहां हय गवय मुकय मत्स्य और मनुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होवे, अर्थात् इनसे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—हयी; गवयी; मुकयी; मत्सी; मनुषी ।।११५।।

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च ॥११६॥

—अ० ४ । १ । ६४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद पाक आदि शब्द हो, उससे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—ओदनपाकी; मुद्गपर्णी; षट्पर्णी; शङ्खपुष्पी; बहुफली; दर्भमूली; गोबाली ॥११६॥

वा०--सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः ॥११७॥

सत् अंचु काण्ड प्रान्त शत एक इन प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुष्प प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो।

सूत्र ११६ से प्राप्त है, उसका विशेष शब्दों के योग में निषेध किया है। जैसे—सत्पुष्पा; प्राक्पुष्पा; प्रत्यक्पुष्पा; काण्डपुष्पा; प्रान्तपुष्पा; शतपुष्पा; एकपुष्पा ॥११७॥

वा०--सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥११८॥

सम् भस्त्र अजिन शण और पिण्ड शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो। यहाँ सर्वत्र ङीष् का निषेध होने से टाप् हो जाता है।

जैसे सम्फला; भस्त्रफला; अजिनफला; शणफला; पिण्डफला ॥११८॥

वा०--श्वेताच्च ॥११९॥

श्वेत शब्द से परे जो फल उससे भी ङीप् न हो। जैसे—श्वेतफला ॥११९॥

वा०--त्रेश्च ॥१२०॥

त्रि शब्द से परे जो फल उससे भी ङीष् न हो। जैसे—त्रिफला ॥१२०॥

वा०—मूलान्नञः ॥१२१॥

नञ् से परे जो मूल प्रातिपदिक उससे भी ङीष् प्रत्यय न होवे। जैसे—न मूलमस्याः सा अमूला इत्यादि ॥१२१॥

इतो मनुष्यजातेः ॥१२२॥ —अ० ४। १। ६५॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—अवन्ती; कुन्ती; दाक्षी; प्लाक्षी इत्यादि।

यहाँ 'इकारान्त' ग्रहण इसलिये है कि—विट्; दरत्, यहां ङीष् न होवे। 'मनुष्य' ग्रहण इसलिये है कि—तित्तिरिः, यहां न हो। और पूर्वसूत्र से जाति की अनुवृत्ति चली आती, फिर 'जाति' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि—यकारोपध से भी ङीष् प्रत्यय हो जावे, जैसे—औदमेयी इत्यादि ॥१२२॥

वा०—इञ उपसङ्ख्यानमजात्यर्थम् ॥१२३॥

जाति के न होने से स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—सौतङ्गमी; मौनचित्ती[1] इत्यादि ॥१२३॥

ऊङुतः ॥१२४॥ —अ० ४। १। ६६॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची उकारान्त प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कुरूः; ब्रह्मबन्धूः; वीरबन्धूः।

यकारोपध के निषेध की अनुवृत्ति यहां आती है, इसी कारण अध्वर्युर्ब्राह्मणी, इत्यादि में ऊङ् प्रत्यय नहीं होता ॥१२४॥

---

१. सुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक प्रकरण का इञ् प्रत्यय है, इस कारण जाति नहीं ॥

वा०--अप्राणिजातेश्चारज्वादीनाम् ।।१२५।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अप्राणिजातिवाची [उकारान्त] प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे, परन्तु रज्जु आदि प्रातिपदिकों से न हो । जैसे--अलाबूः; कर्कन्धूः ।

यहां 'अप्राणि' ग्रहण इसलिये है कि—कृकबाकुः, यहां न हो । और 'अरज्वादि' ग्रहण इसलिये है कि—रज्जुः; हनुः, इत्यादि से ऊङ् न हो ।।१२५।।

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ।।१२६।। —अ० ४ । १ । ६७ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बाहु शब्दान्त प्रातिपदिक से संज्ञाविषय में ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे--भद्रबाहूः; जालबाहूः ।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि--वृत्तबाहुः; सुबाहुः, इत्यादि से न होवे ।।१२६।।

पङ्गोश्च ।।१२७।। —अ० ४ । १ । ६८ ।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पंगु प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—पंगूः ।।१२७।।

वा०--श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः ।।१२८।।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान श्वशुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय और उस के उकार अकार का लोप हो जावे । जैसे—श्वश्रूः ।

यहां किसी से ऊङ् प्राप्त नहीं, इसलिये यह वार्त्तिक अपूर्व-विधायक है ।।१२८।।

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ।।१२९।। —अ० ४ । १ । ६९ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऊरु उत्तरपद में है जिस के, उस प्रातिपदिक से उपमान अर्थ में ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—

कदलीस्तम्भ इवोरू अस्याः स्त्रियाः सा कदलीस्तम्भोरूः; नागनासोरूः ।

यहां 'औपम्य' ग्रहण इसलिये है कि—वृत्तोरुः स्त्री, यहां न होवे ।।१२९।।

संहितशफलक्षणवामादेश्च ।।१३०।।

—अ० ४ । १ । ७० ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संहित शफ लक्षण वा वाम शब्द जिस के आदि में हो, ऐसे ऊरूत्तर प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—संहितोरूः; शफोरूः; लक्षणोरूः; वामोरूः ।

यहां उपमान अर्थ नहीं है, इसलिये इस सूत्र का पृथक् आरम्भ है, नहीं तो पूर्व सूत्र से ही हो जाता ।।१३०।।

वा०—सहितसहाभ्यां च ।।१३१।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान सहित और सह शब्द से परे जो ऊरु प्रातिपदिक उस से ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—सहितोरूः; सहोरूः इत्यादि ।।१३१।।

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ।।१३२।।

—अ० ४ । १ । ७१ ।।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—कद्रूश्च वै सुपर्णी च; मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् ।

यहां 'छन्दो' ग्रहण इसलिये है कि—कद्रूः; कमण्डलुः, यहां न हो ।।१३२।।

वा०—गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामुपसङ्ख्यानम् ॥१३३॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगविषय में गुग्गुलु मधु जतु और पतयालु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—गुग्गुलूः; मधूः; जतूः; पतयालूः ॥१३३॥

संज्ञायाम् ॥१३४॥ —अ० ४। १। ७२॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संज्ञाविषय में कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कद्रूः; कमण्डलूः।

यहां 'संज्ञा' इसलिये है कि—कद्रूः; कमण्डलुः, यहां ऊङ् न होवे ॥१३४॥

शाङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥१३५॥ —अ० ४। १। ७३॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जाति अर्थ में शाङ्गरव आदि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीन् प्रत्यय होवे। जैसे—शाङ्गरवी! कापटवी। अञन्त—वैदी; और्वी।

यहां जाति की अनुवृत्ति आने से पुंयोग में प्राप्त ङीष् का बाधक यह सूत्र नहीं होता। जैसे—वैदस्य स्त्री वैदी, यहां ङीष् होता ही है ॥१३५॥

यङश्चाप् ॥ १३६ ॥ —अ० ४। १। ७४॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे। जैसे—आम्बष्ठ्या; सौवीर्या; कारीषगन्ध्या; वाराह्या इत्यादि ॥१३६॥

वा०--षाच्च यञः ॥ १३७ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो षकार से परे यञ् तदन्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे। जैसे—शार्कराक्ष्या; पौतिमाष्या; गौकक्ष्या। इत्यादि ॥१३७॥

आवट्याच्च[1] ॥ १३८ ॥ —अ० ४।१।७५॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची आवट्य शब्द से चाप् प्रत्यय होवे। जैसे—आवट्या ॥१३८॥

तद्धिताः ॥ १३९ ॥ —अ० ४।१।७६॥

यह अधिकार सूत्र है। पञ्चमाऽध्याय पर्य्यन्त इसका अधिकार जायगा। इससे आगे जो जो प्रत्यय विधान करें, सो सो तद्धित-संज्ञक जानने चाहियें ॥१३९॥

यूनस्तिः ॥ १४० ॥ —अ० ४।१।७७॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान युवन् शब्द से ति प्रत्यय होता है, वह तद्धितसंज्ञक भी हो जावे। जैसे—युवतिः ॥१४०॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥ १४१ ॥
—अ० ४।१।७८॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र अर्थ में विहित ऋषिभिन्न अण् और इञ् हैं, ये जिनके अन्त में हों, ऐसे गुरूपोत्तम अर्थात् जो

---

१. यह अवट शब्द गर्गादिकों में पढ़ा है, इसलिये यञ् प्रत्ययान्त से ङीष् प्रत्यय (यञश्च) इस उक्त सूत्र से प्राप्त है उसका अपवाद है। परन्तु प्राचीन आचार्यों के मत में तो ष्फ होता ही है। जैसे—आवट्यायनी ॥

तृतीय आदि अन्त्यवर्ण के पूर्व गुरुसंज्ञक वर्ण हों, उन प्रातिपदिकों के स्थान में ष्यङ् आदेश हो, वह तद्धितसंज्ञक भी हो जावे ।

जैसे—अण्—करीषस्येव गन्धोऽस्य स करीषगन्धिः; कुमुदगन्धिः । तस्य [अपत्यं] स्त्री कारीषागन्ध्या; कौमुदगन्ध्या । इञ्—वाराह्या; बालाक्या[1] ।

यहां 'अण् और इञ्' इसलिये है कि—ऋतभागस्यापत्यं स्त्री आर्त्तभागी, यहां विदादिकों से अञ् हुआ है, इस कारण ष्यङ् नहीं होता । 'अनार्ष' इसलिये कहा है कि—वाशिष्ठी; वैश्वामित्री, यहां न हो । 'गुरूपोत्तम' ग्रहण इसलिये है कि— औपगवी; कापटवी, यहां न हो । और 'गोत्र' इसलिये है कि—आहिच्छत्री, यहां न हो ।।१४१।।

गोत्रावयवात् ॥ १४२ ॥ —अ० ४ । १ । ७९ ॥

इस सूत्र का आरम्भ गुरूपोत्तम विशेषण न घटने के लिये है ।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र का अवयव अर्थात् गोत्राभिमतकुल में मुख्य पुणिक भुणिक और मुखर आदि प्रातिपदिक से विहित जो गोत्र अर्थ में अण् और इञ् हैं, उनके स्थान में ष्यङ् आदेश हो, वह तद्धितसंज्ञक भी होवे । जैसे—**पौणिक्या**; भौणिक्या; **मौखर्य्या** इत्यादि ।।१४२।।

---

१. यहां करीषगन्धि और कुमुदगन्धि शब्दों से (तस्यापत्यम्) इस से अण् और वराह तथा बलाका शब्दों से (अतइञ्) इस आगामी सूत्र से इञ् हुआ है ।।

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ —अ० ४ । १ । ८० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से ष्यङ् प्रत्यय, और उसकी तद्धितसंज्ञा भी हो। जैसे—कौड्या; लाड्या; व्याड्या इत्यादि ॥१४६॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ १४४ ॥ —अ० ४ । १ । ८१ ॥

गोत्र अर्थ में वर्त्तमान दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ष्यङ् प्रत्यय हो, उसकी तद्धितसंज्ञा भी हो।

जैसे—दैवयज्ञ्या; शौचिवृक्ष्या; सात्यमुग्र्या; कण्ठेविद्ध्या।

और पक्ष में (इतो मनुष्यजातेः) इस उक्त सूत्र से ङीष् होता है। जैसे—दैवयज्ञी; शौचिवृक्षी; सात्यमुग्री; काण्ठेविद्धी इत्यादि ॥१४४॥

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ १४५ ॥ —अ० ४ । १ । ८२ ॥

समर्थानाम् प्रथमात् वा इन तीन पदों का अधिकार करते हैं। इसके आगे जो जो प्रत्यय कहे हैं, वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे, पक्ष में वाक्य भी बना रहे। यह अधिकार छः पाद अर्थात् पञ्चमाध्याय के द्वितीय पाद के अन्तपर्य्यन्त जावेगा। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः।

यहां 'समर्थानाम्' इसलिये है कि—कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य, यहां उपगु शब्द से प्रत्यय नहीं होता। 'प्रथमात्' इसलिये है कि—षष्ठ्यन्त ही से होवे प्रथमान्त से नहीं हो। जैसे—उपगु से होता है, अपत्य से नहीं हो। 'वा' इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे। जैसे—उपगोरपत्यम् ॥१४५॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥१४६॥ —अ० ४।१।८३॥

(तेन दीव्यति०) इस सूत्र पर्यन्त 'अण्' प्रत्यय का अधिकार करते हैं। यहां से आगे जो जो विधान करेंगे, वहां वहां अपवाद विषयों को छोड़ के अण् ही प्रवृत्त होगा।

जैसे—(तस्यापत्यम्) यहां प्रत्यय विधान किया है, सो अधिकार के होने से अण् ही होता है। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः; कापटवः इत्यादि ॥१४६॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च[१] ॥ १४७ ॥ —अ० ४।१।८४॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों, अर्थात् 'तेन दीव्यति०' इस सूत्र से पूर्व पूर्व जो जो अर्थ विधान किये हैं, उन उन में अश्वपति आदि प्रातिपदिकों से अण् ही होवे। जैसे—आश्वपतम्; शातपतम्; धानपतम्; गाणपतम् इत्यादि ॥१४७॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥ १४८ ॥

—अ० ४।१।८५॥

यहां भी प्राग्दीव्यतीय की अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र अण् का अपवाद है।

---

१. पति जिनके उत्तरपद में हो उन प्रातिपदिकों से अगले सूत्र में ण्य प्रत्यय कहा है, उस का पुरस्तात् अपवाद यह सूत्र है॥

दिति अदिति आदित्य और पत्युत्तरपद प्रादिपदिक से प्राग्दी-व्यतीय अर्थों में तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होवे। जैसे—दैत्यः; आदित्यः; आदित्यम्। पत्युत्तरपद—प्राजापत्यम्; सैनापत्यम् इत्यादि ॥ १४८ ॥

वा०—यमाच्च ॥१४९॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यम प्रातिपदिक से भी तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होवे। जैसे—याम्यम् ॥ १४९ ॥

वा०—वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥१५०॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वाक् मति और पितृमत् प्रातिपदिकों से [वैदिक प्रयोग विषय में] तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय हो। जैसे—वाच्यम्; मात्यम्; पैतृमत्यम् ॥ १५० ॥

वा०—पृथिव्या ञाञौ ॥१५१॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में पृथिवी प्रातिपदिक से ञ और अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पार्थिवा; पार्थिवी[1] ॥ १५१ ॥

वा०—देवाद्यञञौ ॥१५२॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में देव प्रातिपदिक से यञ् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—दैव्यम्; दैवम् ॥ १५२ ॥

वा०—बहिषष्टिलोपश्च ॥१५३॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ण्य प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे। जैसे—बहिर्भवो बाह्यः ॥ १५३ ॥

---

१. यहां ञ और अञ् प्रत्ययों में इतना ही भेद है कि ञान्त से ङीप् प्राप्त नहीं, और अञान्त से ङीप् हो जाता है ॥

वा०—ईकक् च ।।१५४।।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकक् प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे । जैसे—बाहीकः ।। १५४ ।।

वा०—ईकञ् छन्दसि ।।१५५।।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोगविषयक बहिष् प्रातिपदिक से ईकञ् प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे । जैसे—बाहीकः[1] ।। १५५ ।।

वा०—स्थाम्नोऽकारः ।। १५६।।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय होवे । जैसे—अश्वत्थामः ।। १५६ ।।

वा०—लोम्नोऽपत्येषु बहुषु ।।१५७।।

बहुत अपत्य वाच्य हों, तो लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय हो जावे । जैसे—उडुलोम्नोऽपत्यानि उडुलोमाः; शरलोमाः इत्यादि ।

यहां 'बहुत अपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—उडुलोम्नोऽपत्यम् औडुलोमिः; शारलोमिः, यहाँ अकार प्रत्यय न होवे ।। १५७ ।।

वा०—सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत् ।।१५८।।

सर्वत्र अर्थात् प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अण् आदि अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में यत् प्रत्यय ही होवे । जैसे—गव्यम् ।

---

१. पूर्व वार्त्तिक में ईकक् और यहां ईकञ् इन दो प्रत्ययों में केवल स्वर का ही भेद है । अर्थात् लोक में अन्तोदात्त और वेद में आद्युदात्त स्वर होता है ।।

यहाँ 'अजादिप्रसंग' इसलिये कहा है कि—**गोरूप्यम्**; गोमयम्, इत्यादि में यत् न होवे ।। १५८ ।।

उत्सादिभ्योऽञ् ।।१५९।। —अ० ४ । १ । ८६ ।।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होवे । जैसे—औत्सः; औदपानः; वैकरः इत्यादि ।

अण और उस के अपवादों का भी यह सूत्र अपवाद है ।। १५९ ।।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ।।१६०।।

—अ० ४ । १ । ८७ ।।

(धान्यानां भवने०) इस सूत्र से पूर्व पूर्व सब अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों ।

जैसे—स्त्रीषु भवम् स्त्रैणम्; पौंस्नम् । स्त्रीभ्य आगतम् स्त्रैणम्; पौंस्नम् । स्त्रिया प्रोक्तम् स्त्रैणम्; पौंस्नम् । स्त्रीभ्यो हितम् स्त्रैणम् ; पौंस्नम् इत्यादि ।। १६० ।।

द्विगोर्लुगनपत्ये ।।१६१।। —अ० ४ । १ । ८८ ।।

द्विगु का सम्बन्धी निमित्त, अर्थात् जिसको मानके द्विगु किया हो, उस अपत्यवर्जित प्राग्दीव्यतीय तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः; दशकपालः; द्वौ वेदावधीते द्विवेदः; त्रिवेदः ।

[यहां 'अनपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—द्वैदेवदत्तिः] इत्यादि में लुक् न हो ।। १६१ ।।

गोत्रेऽलुगचि ॥१६२॥ —अ० ४ । १ । ८९ ॥

जो (यस्कादिभ्यो गोत्रे) इत्यादि सूत्रों से जिन गोत्र प्रत्ययों का लुक् कह चुके हैं सो न हो, प्राग्दीव्यतीय अजादिप्रत्यय परे हों तो। जैसे—गर्गाणां छात्राः गार्गीयाः; वात्सीयाः; आत्रेयीयाः; खारपायणीयाः।

यहां 'गोत्र' [ग्रहण] इसलिये है कि—कौबलम्; बादरम्; यहां निषेध न हो। और 'अच्' ग्रहण इसलिये है कि—गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्; गर्गमयम्, यहां हलादि प्रत्ययों के परे लुक् हो जावे ॥ १६२ ॥

यूनि लुक् ॥१६३॥ —अ० ४ । १ । ९० ॥

जब प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे, तब युवापत्य अर्थ में विहित जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय उसका लुक् हो, फिर जिस प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे।

जैसे—फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्य युवापत्यम्, यहां (फाण्टाहृतिमिम०) इससे युवापत्य में ण होकर=फाण्टाहृतः। फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः इस अर्थ की विवक्षा होते ही युवापत्य का लुक् होके उस इञ् प्रत्ययान्त फाण्टाहृति प्रातिपदिक से (इञश्च) इस सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय हो जाता है=जैसे—फाण्टाहृताः।

तथा भगवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः, यहां प्रथम गोत्र में इञ्। तस्य भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः, यहां युवापत्य में ठक् हुआ है भागवित्तिकस्य यूनश्छात्राः, इस अर्थ की अपेक्षा में यहां भी पूर्व के समान युव प्रत्यय ठक् की निवृत्ति होकर इञन्त से अण् हो जाता है=जैसे—भागवित्ताः। [तिकस्यापत्यं

तैकायनिः । तस्य] तैकायनेरपत्यं माणवकः तैकायनीयः। तैकायनीयस्य यूनश्छात्राः तैकायनीयाः, यहां युव प्रत्यय छ की निवृत्ति में फिञ् प्रत्ययान्त तैकायनि वृद्ध प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हुआ है, इत्यादि ।

यहाँ 'अजादि के परे लोप' इसलिये कहा है कि—फाण्टाहृतरूप्यम्; फाण्टाहृतमयम्, यहां लुक् न हो। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में लोप होता है, अन्यत्र नहीं—भागवित्तिकाय हितं भागवित्तिकीयम्, यहां न हो ।। १६३ ।।

फक्फिञोरन्यतरस्याम् ।।१६४।। —अ० ४ । १ । ९१ ।।

जो प्राग्दीव्यतीय अर्थवाची अजादि प्रत्यय परे हों, तो फक् और फिञ् युवप्रत्ययों का लुक् विकल्प करके होवे ।

जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः (गर्ग शब्द से यञ्), तस्य युवापत्यम् (तदन्त से फक्)=गार्ग्यायणः, तस्य छात्राः, इस विवक्षा में फक् का लुक्=गार्गीयाः। और जिस पक्ष में लुक् न हुआ वहां गार्ग्यायणीया; वात्सीयाः, वात्स्यायनीयाः इत्यादि। फिञ्—यस्कस्यापत्यम् (शिवादिकों से अण्) यास्कः, तस्य युवापत्यम् (अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ्) यास्कायनिस्तस्य छात्राः, इस विवक्षा में फिञ् का विकल्प से लुक्=यास्कीयाः, यास्कायनीयाः इत्यादि ।। १६४ ।।

तस्यापत्यम् ।।१६५।। —अ० ४ । १ । ९२ ।।

समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में अण् आदि प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे—उपगोरपत्यम्

औपगव; आश्वपत:; दैत्य:; औत्स:; स्त्रैण:; पौंस्न: इत्यादि ।। १६४ ।।

ओर्गुण: ।।१६६।। —अ० ६ । ४ । १४६ ।।

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो, तो उवर्णान्त भसंज्ञक अङ्ग को गुण हो । जैसे—उपगोरपत्यम् औपगव: इत्यादि ।। १६६ ।।

तद्धितेष्वचामादे: ।।१६७।। —अ० ७ । २ ।११७ ।।

जो ञित् णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो अचों के बीच में जो आदि अच् उसके स्थान में वृद्धि हो । जैसे—औपगव:; बाभ्रव्य:; माण्डव्य: इत्यादि ।। १६७ ।।

यस्येति च ।।१६८।। —अ० ६ । ४ । १४८ ।।

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय और ईकार परे हों, तो भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप होवे । जैसे—ईकार—दाक्षी; प्लाक्षी । तद्धित में इवर्ण का लोप—दौलेय:; बालेय:; आत्रेय: इत्यादि । अवर्ण का लोप—कुमारी; किशोरी; दैत्य:; आश्वपत:; औत्स:; स्त्रैण:; पौंस्न: इत्यादि ।। १६८ ।।

एको गोत्रे ।।१६९।। —अ० ४ । १ । ९३ ।।

गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय होवे, अर्थात् द्वितीय प्रत्यय न हो । अथवा प्रकृति का नियम करना चाहिये कि जहां गोत्रापत्य की विवक्षा हो, वहां एक ही प्रथम मुख्य जिससे अपत्याधिकार में कोई प्रत्यय न हुआ हो, उससे प्रत्यय की उत्पत्ति हो । जैसे—गार्ग्य:; नाडायन: इत्यादि ।। १६९ ।।

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥१७०॥ —अ० ४ । १ । ९४ ॥

और जब युवापत्य की विवक्षा हो, तो गोत्रप्रत्ययान्त प्रकृति ही से दूसरा प्रत्यय होवे । जैसे—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाक्षायणः; प्लाक्षायणः; यहां युवापत्य में 'फक्' और औपगविः; नाडायनिः; यहां युवापत्य में 'इञ्' हुआ है ।

यहां 'स्त्री का निषेध' इसलिये है कि—दाक्षी; प्लाक्षी, यहां गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीप्रत्यय हुआ है ॥ १७० ॥

अत इञ् ॥१७१॥ —अ० ४ । १ । ९५ ॥

जो समर्थों का प्रथम षष्ठीसमर्थ अकारान्त प्रातिपदिक है, उससे अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—दक्षस्यापत्यं माणवको दाक्षिः; दाशरथिः ।

यह सूत्र अण् का अपवाद है । यहां 'तपरकरण' इसलिये है कि—शुभंयाः; कीलालपाः; इत्यादि से 'इञ्' न हो, अर्थात् आकारान्त से निषेध हो जाय ॥ १७१ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ॥१७२॥ —अ० ४ । १ । ९६ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठी समर्थ बाहु आदि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—बाहविः; औपबाहविः इत्यादि ॥ १७२ ॥

सुधातुरकङ् च ॥१७३॥ —अ० ४ । १ । ९७ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठीसमर्थ सुधातु प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय विकल्प करके और उसको अकङ् आदेश भी हो । जैसे—सुधातुरपत्यं सौधातकिः ॥ १७३ ॥

वा०—व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥१७४॥

व्यास, वरुड, निषाद, चण्डाल और बिम्ब प्रातिपदिकों से इञ प्रत्यय होवे। जैसे—व्यासस्यापत्यं माणवको वैयासकिः; वारुडकिः; नैषादकिः; चाण्डालकिः; बैम्बकिः[1] इत्यादि ॥१७४॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्[2] ॥१७५॥

—अ० ४। १। ९८॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में[3] प्रथम प्रकृति कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो। जैसे—कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः; ब्राध्नायन्यः, ब्राध्नायन्यौ, ब्राध्नायनाः इत्यादि।

यहां 'गोत्र' इसलिये कहा है कि—कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः, यहां अनन्तरापत्य में च्फञ् न हो। गोत्र का अधिकार (शिवादि०) इस सूत्रपर्यन्त जानना चाहिये ॥ १७५ ॥

---

१. इन व्यास आदि प्रातिपदिकों से अदन्तों के होने से इञ् तो हो जाता, पर अकङ् आदेश होने के लिये यह वार्त्तिक पढ़ा है ॥

२. यहां च्फञ् प्रत्यय में चकार का अनुबन्ध (व्रातच्फञो०) इस सूत्र में सम्बन्ध होने के और ञकार वृद्धि के लिये है। और इन च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो जाता है। उस ञ्य प्रत्यय की तद्राजसंज्ञा होने से बहुवचन में लुक् हो जाता है ॥

३. विकल्प, समर्थों का प्रथम इन दो का अधिकार छः पाद में, और तद्धितसंज्ञा का अधिकार पंचमाध्याय पर्य्यन्त तथा षष्टीसमर्थ का अधिकार इसी पाद में जाता है। सो इन सब का प्रतिसूत्र में सम्बन्ध समझना चाहिये, अब बार बार नहीं लिखेंगे ॥

नडादिभ्यः फक् ॥१७६॥ —अ० ४ । १ । ९९ ॥

यह सूत्र भी इञ् का अपवाद है । नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्राऽपत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होवे । जैसे—नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः; चारायणः इत्यादि ।

यहां भी गोत्र की अनुवृत्ति आने से अनन्तरापत्य में नाडिः, [यहां] फक् नहीं होता, किन्तु इञ् हो जाता है ॥ १७६ ॥

हरितादिभ्योऽञः[1] ॥१७७॥

—अ० ४ । १ । १००॥

यह भी सूत्र इञ् का ही अपवाद है और जो शब्द हरितादिकों में अदन्त न हों उनसे अण् का अपवाद समझना चाहिये ।

जो विदाद्यन्तगत अञन्त हरितादि प्रातिपदिक हैं, उनसे युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय हो । जैसे—हरितस्य युवापत्यं हारितायनः; कैदासायनः इत्यादि ॥ १७७ ॥

यञिञोश्च ॥१७८॥ —अ० ४ । १ । १०१ ॥

युवापत्य अर्थ में यञन्त और इञन्त प्रातिपदिकों से फक् प्रत्यय हो । जैसे—यञन्त—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः । इञन्त से—दाक्षायणः; प्लाक्षायणः इत्यादि ।

यह सूत्र यञन्त से इञ् का और इञन्त से अण् का बाधक समझना चाहिये ॥ १७८ ॥

---

१. इस सूत्र में गोत्राऽपत्य की विवक्षा यों नहीं है कि हरितादिकों से प्रथम गोत्रापत्य में अञ् विधान है, फिर दूसरा प्रत्यय गोत्रापत्य में नहीं हो सकता; किन्तु युवापत्य में ही होगा ॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ।।१७९।।

—अ० ४ । १ । १०२ ।।

जो गोत्रापत्य अर्थ में भृगु, वत्स, आग्रायण ये अपत्य विशेष अर्थ वाच्य हों, तो यथासंख्य करके शरद्वत् शुनक और दर्भ प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय हो।

जैसे—शारद्वतायनः, जो भृगु का गोत्र हो, नहीं तो शारद्वतः। शौनकायनः, जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो शौनकः। दार्भायणः, जो आग्रायण का गोत्र हो, नहीं तो दार्भिः।

यह भी सूत्र अण् और इञ् दोनों का अपवाद है ।। १७९ ।।

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ।।१८०।।

—अ० ४ । १ । १०३ ।।

द्रोण पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

यह सूत्र इञ् का ही अपवाद है। और एक विकल्प चला ही आता है, दूसरा ग्रहण इसलिये है कि—पक्ष में इञ् प्रत्यय भी हो जावे। और यह अप्राप्त विभाषा समझनी चाहिये। जैसे—द्रोणस्य गोत्रापत्यं द्रौणायनः, द्रौणिः, पार्वतायनः, पार्वतिः; जैवन्तायनः, जैवन्तिः ।। १८० ।।

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्[1] ।।१८१।।

—अ० ४ । १ । १०४ ।।

---

१. इस प्रकरण में अपत्य तीन प्रकार के समझने चाहियें—अर्थात् गोत्रापत्य, युवापत्य और अनन्तरापत्य। इसमें से गोत्रापत्य और युवापत्य का आगे इसी प्रकरण में व्याख्यान किया है। अनन्तरापत्य पिता की

गोत्राऽपत्य अर्थ में विद आदि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—विदस्य गोत्रापत्यं वैदः; और्वः इत्यादि।

परन्तु विदादिगण में जो ऋषिवाची से भिन्न पुत्र आदि शब्द पढ़े हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पौत्रः; दौहित्रः; नानान्द्रः इत्यादि।

यह सूत्र भी इञ् आदि प्रत्ययों का अपवाद है ॥ १८१ ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ॥१८२॥ —अ० ४ । १ । १०५ ॥

यह सूत्र भी अण् आदि प्रत्ययों का ही अपवाद है।

गोत्रापत्य अर्थ में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्यः; वात्स्यः; वैयाघ्रपद्यः इत्यादि ॥ १८२ ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः[1] ॥१८३॥

—अ० ४ । १ । १०६ ॥

ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य अर्थ वाच्य हों, तो मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मधोर्गोत्रापत्यं

अपेक्षा में पुत्र को कहते हैं कि जिसमें कुछ अन्तर नहीं होता। सो इस विदादिगण में जो ऋषिवाची प्रातिपदिक हैं, उन्हीं से गोत्रापत्य में हो, अन्य प्रातिपदिकों से अनन्तरापत्य में अञ् होता है ॥

१. यह सूत्र अण् का अपवाद है। और बभ्रु शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों ने पढ़ा है, वहाँ पढ़ने से इससे स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो जाता है। जैसे—बाभ्रव्यायणी। और इस सूत्र में इस बभ्रु शब्द का पाठ नियमार्थ है कि कौशिक गोत्र में ही यञ् प्रत्यय हो, अन्यत्र नहीं ॥

माधव्य:; जो ब्राह्मण होवे, नहीं तो माधव:। बाभ्रव्य:, जो कौशिक होवे, नहीं तो बाभ्रव: ।। १८३ ।।

कपिबोधादाङ्गिरसे ।।१८४।। —अ० ४ । १ । १०७ ।।

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में कपि और बोध प्रातिपदिक से यञ् होवे । जैसे—कपेर्गोत्रापत्यं काप्य:; बोध्य:, जो अङ्गिरा का गोत्र होवे । नहीं तो कापेय:; बोधि:, यहां ढक् और इञ् प्रत्यय हो जाते हैं ।

और इन्हीं दोनों का यह अपवाद भी है ।। १८४ ।।

वतण्डाच्च ।।१८५।। —अ० ४ । १ । १०८ ।।

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में वतण्ड प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे । जैसे—वतण्डस्य गोत्रापत्यं वातण्ड्य:, यहां भी जो अङ्गिरा का गोत्र होवे । नहीं तो वातण्ड:, यहां अण् हो जाता है ।

और अण् का ही अपवाद यह सूत्र भी है ।। १८५ ।।

लुक् स्त्रियाम् ।।१८६।। —अ० ४ । १ । १०९ ।।

जहां आङ्गिरसी स्त्रीवाच्य रहे, वहां वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् होवे ।

जब लुक् हो जाता है, तब शार्ङ्गरवादि गण में पढ़ने से ङीन् प्रत्यय हो जाता है । जैसे—वतण्डी, जो अङ्गिरा के गोत्र की स्त्री

होवे। नहीं तो वातण्ड्यायनी[1] यहां ष्फ प्रत्यय हो जाता है ॥ १८६ ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥१८७॥ —अ० ४। १। ११० ॥

यह सूत्र अण् और इञ् का ही बाधक है।

गोत्राऽपत्य अर्थ में अश्व आदि प्रातिपदिकों से फञ् प्रत्यय होवे। जैसे—अश्वस्य गोत्रापत्यम् आश्वायनः; आश्मायनः; शांखायनः इत्यादि ॥ १८७ ॥

भर्गात् त्रैगर्ते ॥१८८॥ —अ० ४। १। १११ ॥

यह केवल इञ् का ही अपवाद है। भर्ग प्रातिपदिक से गोत्रापत्य त्रैगर्त्त अर्थ में फञ् प्रत्यय होवे। जैसे—भर्गस्य गोत्रापत्यं भार्गायणः; जो त्रिगर्त्त का गोत्र हो। नहीं तो भार्गिः, [यहां] इञ् प्रत्यय हो जावे ॥ १८८ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥१८९॥ —अ० ४। १। ११२ ॥

यहाँ से गोत्र की निवृत्ति हो गई। अब सामान्याऽपत्य में प्रत्ययविधान करेंगे। यह सूत्र इञ् आदि का अपवाद यथायोग्य समझना चाहिए।

---

१. यह वतण्ड शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है, इस कारण इससे स्त्रीगोत्र में ष्फ प्रत्यय होके यह प्रयोग होता है। और वतण्ड शब्द शिवादिगण में भी पढ़ा है, इससे स्त्रीलिङ्ग में वातण्डी भी प्रयोग होता है ॥

अपत्य अर्थ में शिव आदि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे—शिवस्य गोत्रापत्यं शैवः; प्रौष्ठः; प्रौष्ठिकः[१] इत्यादि ।।१८९।।

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ।।१९०।।

—अ० ४ । १ । ११३ ।।

यह सूत्र ढक् प्रत्यय का अपवाद है । अपत्य अर्थ में अवृद्ध नदी मानुषीवाचक तन्नामक प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे । जैसे—यमुनाया अपत्यं यामुनः, इरावत्या अपत्यम् ऐरावतः; वैतस्तः; नार्मदः इत्यादि ।

यहां 'वृद्ध से निषेध' इसलिए है कि—चान्द्रभाग्याया अपत्यं चान्द्रभागेयः, वासवदत्तेयः, इत्यादि में अण् न हुआ । 'नदी मानुषी' इसलिए कहा है कि—सौपर्णेयः; वैनतेयः, यहां अण् न होवे । और 'तन्नामिका' ग्रहण इसलिए है कि—शोभनाया अपत्यं शोभनेयः, यहां भी न हो ।।१९०।।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ।।१९१।।

—अ० ४ । १ । ११४ ।।

---

१. तक्षन् शब्द शिवादिगण में पढ़ा है, उससे (उदीचामिञ्) इस आगामी सूत्र से उत्तरदेशीय आचार्यों के मत के इञ् प्राप्त है, उसका बाधक होने के लिए । परन्तु ण्य प्रत्यय का बाधक नहीं होता । जैसे—ताक्ष्णः; ताक्ष्ण्यः । और गङ्गा शब्द इस गण में पढ़ा है, यहां उससे अण्, तिकादि होने से फिञ् और शुभ्रादिगण में पढ़ने से ढक् प्रत्यय हो जाते हैं । इस प्रकार तीन प्रयोग होते हैं । जैसे—गाङ्गः; गाङ्गायनिः; गाङ्गेयः । तथा विपाशा शब्द यहां और कुञ्जादिगण में भी पढ़ा है, इससे उसके दो प्रयोग होते हैं । जैसे—वैपाशः; वैपाशायन्यः ।।

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में ऋषिवाची वसिष्ठ आदि तथा अन्धक वृष्णि कुरुवंशवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो।

जैसे—[ऋषिः—] वसिष्ठस्याऽपत्यं वासिष्ठः; वैश्वामित्रः। अन्धकः—श्वाफल्कः; रान्धसः। वृष्णिः—वासुदेवः; आनिरुद्धः। कुरुः—नाकुलः; साहदेवः[1] इत्यादि ॥१९१॥

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ १९२ ॥

—अ० ४। १। ११५॥

इस मातृ प्रातिपदिक से अण् तो प्राप्त ही है, उकारादेश होने के लिए यह सूत्र है।

अपत्य अर्थ में संख्या, सम् और भद्रपूर्वक मातृशब्द को उत् आदेश और अण् प्रत्यय भी हो। जैसे—द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः; त्रैमातुरः; षाण्मातुरः; साम्मातुरः; भाद्रमातुरः[2]।

यहां 'संख्या आदि' का ग्रहण इसलिए है कि—सौमात्रः, यहां केवल अण् ही हुआ है ॥१९२॥

---

१. यहां संशय होता है कि शब्द तो नित्य हैं, फिर अन्धक आदि वंशों के आश्रय से इनका व्याख्यान कैसे बन सकता है, क्योंकि वंश तो अनित्य है। (उत्तर) प्रवाहरूप से कल्पकल्पान्त सृष्टि भी नित्य है, और अन्धक आदि अधिकारी शब्द हैं कि इस प्रकार के कुल का नाम अन्धक होना चाहिए, सो अन्धक आदि वंश प्रतिकल्प में अनादि चले आते हैं। इस प्रकार इन अन्धक आदि शब्दों का वंशों के साथ अनादि सम्बन्ध बना हुआ है, कभी नवीन नहीं हुआ ॥

२. विमातृ शब्द शुभ्रादिगण में भी पढ़ा है, उससे वैमात्रेयः, यह भी प्रयोग होता है ॥

कन्यायाः कनीन च ॥१९३॥ —अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में कन्या शब्द से अण् प्रत्यय और उसको कनीन आदेश भी होवे। जैसे—कन्याया अपत्यं कानीनः[1] ॥१९३॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजाऽत्रिषु ॥१९४॥

—अ० ४ । १ । ११७ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। यथासंख्य करके वत्स भरद्वाज और अत्रि अपत्य वाच्य हों, तो विकर्ण शुङ्ग और छगल प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो।

जैसे—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णः, जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो वैकर्णिः। शौङ्गः, जो भरद्वाज का गोत्र हो, नहीं तो शौङ्गिः। छागलः, जो आत्रेय का गोत्र हो, नहीं तो छागलिः। यहां सर्वत्र पक्ष में इञ् प्रत्यय होता है ॥१९४॥

पीलाया वा ॥१९५॥ —अ० ४ । १ । ११८ ॥

द्व्यच् पीला प्रातिपदिक से ढक् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। और पक्ष में ढक् भी होता है। और इसको अप्राप्त विभाषा समझना चाहिए, क्योंकि अण् किसी से प्राप्त नहीं है। अपत्य

---

१. विचार यह है कि कन्या जिसका विवाह न हो उसको कहते हैं, उसका अपत्य कैसे हो सकता है। महाभाष्य में इसका समाधान किया है कि जो विवाह होने से प्रथम ही प्रमत्त होकर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भवती हो जावे, उसका पुत्र हो उसको 'कानीन' कहना चाहिए ॥

अर्थ में पीला प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे, जैसे—पीलाया अपत्यं पैलः; पक्ष में ढक्=पैलेयः ॥१९५॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ १९६ ॥—अ० ४ । १ । ११९ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मण्डूक प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय हो, और चकार से अण् विकल्प करके होवे, पक्ष में इञ् भी हो जावे । जैसे—माण्डूकस्याऽपत्यं माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः ॥१९६॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १९७ ॥ —अ० ४ । १ । १२० ॥

यह सूत्र अण् और उसके अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य अर्थ में टाबादि स्त्रीपत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय विकल्प करके होवे ॥१९७॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ॥१९८॥
—अ० ७ । १ । २ ॥

जो प्रत्यय के आदि फ ढ ख छ और घ हैं, उनके स्थान में यथासंख्य करके आयन्, एय्, ईन्, ईय्, और इय् आदेश हों । जैसे—फ—नाडायनः; ढ—सौपर्णेयः, वैनतेयः; ख—कुलीनः; छ—शालीयः, पैतृष्वस्त्रीयः; घ—शुक्रियम् इत्यादि ॥१९८॥

वा०—वडवाया वृषे[1] वाच्ये ॥ १९९ ॥

---

१. यद्यपि वडवा शब्द घोड़ी का भी वाचक है, तथापि यहां वड़वा शब्द से बलिष्ठ गौ का ग्रहण होता है, क्योंकि वड़वा शब्द केवल घोड़ी का ही वाचक नहीं, किन्तु ब्राह्मणी अश्वा कुम्भदासी तथा अन्य भी स्त्रीजाति का नाम है । तद्यथा—

वडवा प्रातिपदिक से बैल अपत्य वाच्य हो, तो ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—वडवाया अपत्यं वृषो वाडवेय: ॥१९९॥

वा०—अण् कुञ्चाकोकिलात्स्मृत: ॥२००॥

सामान्यापत्य में कुञ्चा और कोकिला शब्द से ढक् का बाधक अण् प्रत्यय होवे। जैसे—कुञ्चाया अपत्यं क्रौञ्च:; कोकिलाया अपत्यं कौकिल: ॥२००॥

द्व्यच: ॥२०१॥ —अ० ४। १। १२१॥

नदी और मानुषीवाची से जो अण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

अपत्यार्थ में टाबादि स्त्रीप्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—दत्ताया अपत्यं दात्तेय:; गौपेय: इत्यादि।

यहां 'द्व्यच्' ग्रहण इसलिए है कि—यमुनाया अपत्यं यामुन:, यहां ढक् न होवे ॥२०१॥

इतश्चानिञ: ॥२०२॥ —अ० ४। १। १२२॥

रौरवो नरके घोरे वडवा द्विजयोषिति।
अश्वायां कुम्भदास्यां च नारीजात्यन्तरेपि च॥
—इति भाष्यप्रदीपकार कैय्यट: ॥

वृष शब्द से वीर्यवान् अश्व का ग्रहण भी करते हैं, जैसे—वृषो वीजाश्वा:। तेन चार्थेन विशेषविहितेनापत्यलक्षणोऽर्थो ढको बाध्यते। तेनापत्ये वाडव इति भवति। उस पक्ष में वडवा शब्द से घोड़ी का ग्रहण कर वृष शब्द से पूर्वोक्त प्रकार अश्व अपत्य समझना चाहिए॥

यह सूत्र सामान्य अण् का अपवाद है। अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययान्तभिन्न इकारान्त प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे— अत्रेरपत्यं आत्रेयः; नैधेयः; वार्ष्णेयः; कापेयः इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' इसलिये कहा है कि—दाक्षिः; प्लाक्षिः। 'इञ् भिन्न' इसलिये कहा है कि—दाक्षायणः; प्लाक्षायणः, यहां इञन्त से ढक् न होवे। और 'द्व्यच्' की अनुवृत्ति इसलिये है कि—मरीचेरपत्यं मारीचः, यहां ढक् को बाध के अण् हो जावे ॥ २०२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च[1] ॥ २०३ ॥ —अ० ४ । १ । १२३ ॥

यह सूत्र इञ् आदि का यथायोग्य अपवाद समझना चाहिये।

अपत्यार्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः; वैष्टपुरेयः इत्यादि ॥ २०३ ॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥२०४॥—अ० ४ । १ । १२४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। [काश्यप] अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय हो। जैसे— विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः; कौषीतकेयः।

यहां 'काश्यप' ग्रहण इसलिये है कि—वैकर्णिः; कौषीतकिः, यहां ढक् न होवे ॥ २०४ ॥

---

१. इस चकार से इस शुभ्रादिगण को आकृतिगण समझना चाहिये, कि जिससे [गाङ्गेयः] पाण्डवेयः, इत्यादि अपठित शब्दों में भी ढक् प्रत्यय हो जावे ॥

भ्रुवो वुक् च ॥ २०५ ॥ —अ० ४ । १ । १२५ ॥

यह अण् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में भ्रू प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को वुक् का आगम भी हो। जैसे—भ्रुवोऽपत्यं भ्रौवेयः ॥ २०५ ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ २०६ ॥

—अ० ४ । १ । १२६ ॥

अपत्यार्थ में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय और इनको इनङ् आदेश भी होवे। जैसे—कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः; ज्यैष्ठिनेयः; कानिष्ठिनेयः[1] इत्यादि ॥ २०६ ॥

हृद्भगसिंध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥

—अ० ७ । ३ । १९ ॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हों, तो हृद् भग और सिन्धु जिनके अन्त हों, उन प्रातिपदिकों के पूर्व और उत्तर-पदों में अचों के आदि अच् को वृद्धि होवे। जैसे—सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः; दौर्भागिनेयः; सौहार्दम्; दौहार्दम्; साक्तु-सैन्धवः इत्यादि ॥ २०७ ॥

कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ —अ० ४ । १ । १२७ ॥

यहां इनङ् आदेश की अनुवृत्ति चली आती है।

अपत्यार्थ में कुलटा प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इसको [विकल्प से] इनङ् आदेश होवे। जैसे—कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः, कौलटेयः ॥ २०८ ॥

---

१. यहां स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर यह सूत्र इनङ् आदेश होने के लिये है।

चटकाया ऐरक् ॥ २०९ ॥ —अ० ४ । १ । १२८ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में चटका शब्द से ऐरक् प्रत्यय हो। जैसे—चटकाया अपत्यं चाटकैरः ॥ २०९ ॥

वा०—चटकाच्च ॥ २१० ॥

यह वार्त्तिक इञ् का अपवाद है। चटक प्रातिपदिक से ऐरक् प्रत्यय होवे। जैसे—चटकस्याऽपत्यं चाटकैरः ॥ २१० ॥

वा०—स्त्रियामपत्ये लुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अपत्य होवे तो ऐरक् प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—चटकाया अपत्यं स्त्री चटका ॥ २११ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ २१२ ॥ —अ० ४ । १ । १२९ ॥

यह भी ढक् अपवाद है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से ढ्रक् प्रत्यय होवे। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधेरः।

शुभ्रादिग में गोधा शब्द पढ़ा है, इस कारण गौधेयः, यह भी प्रयोग हो जाता ॥ २१२ ॥

आरगुदीचाम् ॥ २१३ ॥ —अ० ४ । १ । १३० ॥

गोधा की अनुवृत्ति आती है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होवे, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधारः[1] ॥ २१३ ॥

---

१. रक् प्रत्यय के कहने से गौधारः प्रयोग बन ही जाता, फिर आकारग्रहण से यह ज्ञापक होता है कि अन्य प्रातिपदिकों से भी 'आरक्' प्रत्यय होता है। जैसे—जाडारः; पाण्डारः इत्यादि ॥

क्षुद्राभ्यो वा[1] ।। २१४ ।। —अ० ४ । १ । १३१ ।।

यह भी ढक् का अपवाद है। और पूर्वसूत्र से ढ्रक् की अनुवृत्ति आती है।

अपत्य अर्थ में क्षुद्रा आदि प्रातिपदिकों से ढ्रक् प्रत्यय होवे, पक्ष में ढक् हो। जैसे—काणेरः, काणेयः; दासेरः, दासेयः इत्यादि ।। २१४ ।।

पितृष्वसुश्छण् ।। २१५ ।। —अ० ४ । १ । १३२ ।।

यह सूत्र अण् प्रत्यय का बाधक है। अपत्य अर्थ में पितृष्वसृ प्रातिपदिक से छण् प्रत्यय होवे। जैसे—पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्रीयः ।। २१५ ।।

ढकि लोपः ।। २१६ ।। —अ० ४ । १ । १३३ ।।

अपत्य अर्थ में जो ढक् प्रत्यय परे हो, तो पितृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप होवे। जैसे—पैतृष्वसेयः[2] ।। २१६ ।।

मातृष्वसुश्च ।। २१७ ।। —अ० ४ । १ । १३४ ।।

यह भी अण् का अपवाद है।

अपत्य अर्थ में मातृष्वसृ शब्द से छण् प्रत्यय और ढक् के परे मातृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप भी होवे। जैसे—मातृष्वसुरपत्यं मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः ।। २१७ ।।

---

१. क्षुद्रा उन स्त्रियों को कहते हैं जो अङ्गों से, धर्म से और अच्छे स्वभाव से रहित होवें ।।

२. यहां ढक् प्रत्यय के परे जो लोप कहा है, सो इसी ज्ञापक से पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय होता है ।।

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ २१८ ॥ —अ० ४ । १ । १३५ ॥

यह अण् आदि का अपवाद है।

अपत्यार्थ में चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे। जैसे—कामण्डलेयः; शौन्तिवाहेयः; यामेयः; माहिषेयः; शौरभेयः इत्यादि ॥ २१८ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ २१९ ॥ —अ० ४ । १ । १३६ ॥

यह सूत्र केवल अण् का ही अपवाद है।

अपत्य अर्थ में गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे। जैसे—गृष्टचा अपत्यं गार्ष्टेयः; हार्ष्टेयः; हालेयः; वालेयः; वैश्रेयः इत्यादि ॥ २१९ ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥ २२० ॥ —अ० ४ । १ । १३७ ॥

यह अण् और इञ् दोनों का बाधक है। अपत्यार्थ में राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। जैसे—राज्ञोऽपत्यं राजन्यः; श्वशुर्य्यः ॥ २२० ॥

वा०—राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राजन् शब्द से यत् कहा है, सो जातिवाची राजन् शब्द का ग्रहण समझना चाहिये। जैसे—राजन्यः, जो क्षत्रिय होवे, नहीं तो राजनः ॥ २२१ ॥

क्षत्राद् घः ॥ २२२ ॥ —अ० ४ । १ । १३८ ॥

यह सूत्र इञ् का बाधक है। अपत्यार्थ में क्षत्र प्रातिपदिक से घ प्रत्यय होवे। जैसे—क्षत्रियः, यहाँ भी जाति ही समझनी

चाहिये; क्योंकि जहां जाति न हो वहां क्षात्रिः, इञन्त प्रयोग होवे ॥ २२२ ॥

कुलात् खः ॥ २२३ ॥ —अ० ४ । १ । १३९ ॥

यह भी इञ् का ही अपवाद है। अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख प्रत्यय हो। उत्तरसूत्र में अपूर्वपद ग्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपदसहित और केवल का भी ग्रहण होता है। जैसे—श्रोत्रियकुलीनः; आढ्यकुलीनः; कुलीनः इत्यादि ॥ २२३ ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ[1] ॥ २२४ ॥

—अ० ४ । १ । १४० ॥

अपत्यार्थ में पूर्वपदरहित कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे—कुल्यः; कौलेयकः; कुलीनः।

यहां 'पद' ग्रहण इसलिये है कि बहुच् पूर्वपद हो तो भी ख प्रत्यय हो जावे। जैसे—बहुकुल्यः; बहुकौलेयकः; बहुकुलीनः ॥ २२४ ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥ २२५ ॥ —अ० ४ । १ । १४१ ॥

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

अपत्यार्थ में महाकुल प्रातिपदिक से अञ् और खञ् प्रत्यय विकल्प करके होवें, पक्ष में ख होवे। जैसे—माहाकुलः; माहाकुलीनः; महाकुलीनः ॥ २२५ ॥

---

१. यह अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है ॥

दुष्कुलाड् ढक् ॥२२६॥ —अ० ४ । १ । १४२ ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ढक् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में ख हो जावे । जैसे—दौष्कुलेयः; दुष्कुलीनः ॥२२६॥

स्वसुश्छः ॥२२७॥ —अ० ४ । १ । १४३ ॥

अपत्य अर्थ में स्वसृ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो । जैसे—स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः । यह अण् का बाधक है ॥२२७॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥२२८॥ —अ० ४ । १ । १४४ ॥

यह सूत्र भी अण् का अपवाद है । अपत्यार्थ में भ्रातृ शब्द से व्यत्, और चकार से छ प्रत्यय भी होवे । जैसे—भ्रातृव्यः; भ्रात्रीयः ॥२२८॥

व्यन् सपत्ने[1] ॥२२९॥ —अ० ४ । १ । १४५ ॥

सपत्न अर्थात् शत्रु वाच्य हो, तो भातृ प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो । जैसे—पाप्मना भ्रातृव्येणा; भ्रातृव्यः कण्टकः ॥२२९॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥२३०॥ —अ० ४ । १ । १४६ ॥

यह सूत्र ढक् आदि का अपवाद है । अपत्यार्थ में रेवती आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—रेवत्या अपत्यं रैवतिकः; आश्वपालिकः; माणिपालिकः इत्यादि ॥२३०॥

---

१. यहां अपत्यार्थ की विवक्षा नहीं है, क्योंकि भ्राता का पुत्र शत्रु नहीं हो सकता, और इसी कारण भ्रातृ शब्द का प्रकृत्यर्थ यहां प्रधान नहीं रहता है, किन्तु प्रत्ययार्थ जो शत्रु है, वही प्रधान रहता है ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥२३१॥

—अ० । ४ । १ । १४७ ॥

यह ढक् का अपवाद है । निन्दित युवापत्य अर्थ में गोत्रसंज्ञक स्त्रीवाची प्रातिपदिक से ण, और चकार से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—गार्ग्या अपत्यं जाल्मो गार्ग्यः, गार्गिकः; ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लौचुकायनः, ग्लौचुकायनिकः ।

यहां 'गोत्र' ग्रहण इसलिये है कि—कारिकेयो जाल्मः, यहां कारिका शब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है । 'स्त्रीवाची' इसलिये है कि—औपगविर्जाल्मः, यहां न होवे । 'कुत्सन' इसलिए है कि—गार्गेयो माणवकः, यहां निन्दा के न होने से उत्सर्ग ढक् हो गया, किन्तु ण और ठक् नहीं हुए ॥२३१॥

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥२३२॥

—अ० ४ । १ । १४८ ॥

यहां कुत्सन पद की अनुवृत्ति आती है । अपत्य और कुत्सन अर्थ में वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय बहुल करके हो । जैसे—भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः; तार्णविन्दवस्य युवापत्यं तार्णविन्दविकः । पक्ष में फक् और इञ् हो जाते हैं—भागवित्तायनः; तार्णविन्दविः ।

यहां 'वृद्ध' ग्रहण स्त्री की निवृत्ति के लिये है । 'सौवीर' ग्रहण इसलिये है कि—औपगविः, यहां न होवे । और 'कुत्सन' की अनुवृत्ति इसलिये है कि—भागवित्तायनो माणवकः, यहां भी ठक् न होवे ॥२३२॥

फेश्छ च ।।२३३।। —अ० ४ । १ । १४९ ।।

कुत्सन और सौवीर पदों की अनुवृत्ति आती है । अपत्यार्थ में फिञन्त सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से छ और चकार से ठक् प्रत्यय भी होवे । जैसे—यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः ।

यहां 'कुत्सन' ग्रहण इसलिये है कि—यामुन्दायनिः, यहां अण् का लुक् हो गया है । 'सौवीर' इसलिये है कि—तैकायनिः, यहां छ न होवे ।।२३३।।

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ।।२३४।।

—अ० ४ । १ । १५० ।।

सौवीर पद की अनुवृत्ति यहां आती है, और कुत्सन पद की निवृत्ति हुई । और यह सूत्र फक् प्रत्यय का अपवाद है ।

अपत्य अर्थ में सौवीर गोत्रवाची फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से ण और फिञ् प्रत्यय होवे । जैसे—फाण्टाहृतेरपत्यं फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिः मैमतः, मैमतायनिः ।

यहां 'सौवीर' का ग्रहण इसलिये है कि—फाण्टाहृतायनः; मैमतायनः, यहां ण और फिञ् न हुए ।।२३४।।

कुर्वादिभ्यो ण्यः ।।२३५।। —अ० ४ । १ । १५१ ।।

यह भी इञ् आदि का बाधक यथायोग्य समझना चाहिये ।

अपत्यार्थ में कुरु आदि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय हो । जैसे—कुरोरपत्यं कौरव्यः; गार्ग्यः; माङ्गुष्यः; आजमारक्यः इत्यादि ।।२३५।।

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ।।२३६।।

—अ० ४ । १ । १५२ ।।

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । अपत्यार्थ में सेनान्त लक्षण और कारि अर्थात् कुंभार आदि कारीगरवाची प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे । जैसे—सेनान्त—भीमसेनस्यापत्यं भैमसेन्य[1]; कारिषेण्यः; हारिषेण्यः; वैष्वक्सेन्यः; औग्रसेन्यः इत्यादि । लक्षण—लाक्षण्यः । कारि—तान्तुवाय्यः; कौम्भकार्य्यः इत्यादि ॥२३६॥

उदीचामिञ् ॥२३७॥ —अ० ४ । १ । १५३ ॥

यहां सेनान्त आदि की अनुवृत्ति आती है ।

अपत्यार्थ उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में सेनान्त लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे । जैसे—भीमसेनस्यापत्यं भैमसेनिः; हारिषेणिः, लाक्षणिः; तान्तुवायिः; कौम्भकारिः; नापितिः इत्यादि ॥२३७॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥२३८॥ —अ० ४ । १ । १५४ ॥

यह भी यथायोग्य इञ् आदि का बाधक है ।

अपत्यार्थ में तिक आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय होवे । जैसे—तिकस्यापत्यं तैकायनिः, कैतवायनिः; सांज्ञायनिः इत्यादि ॥२३८॥

कौसल्यकार्म्मार्य्याभ्यां च ॥२३९॥

—अ० ४ । १ । १५५ ॥

यह यञ् प्रत्यय का बाधक है । अपत्यार्थ में कौसल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय हो । जैसे—कौसल्यस्यापत्यं कौसल्यायनिः; कार्मार्य्यायणिः ॥२३९॥

---

१. यद्यपि कुरुवाची होने से भीमसेन शब्द से अण् प्राप्त है तो भी परविप्रतिषेध से ण्य ही होता है ॥

वा०—फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च ॥२४०॥

फिञ् प्रकरण में दगु कोसल कर्मार छाग और वृष प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और प्रत्यय को युट् का आगम होवे। जैसे—दागव्यायनिः; कौसल्यायनिः; कार्मार्य्यायणिः; छाग्यायनिः; वार्ष्यायणिः ॥२४०॥

अणो द्व्यचः ॥२४१॥ —अ० ४। १। १५६॥

यह सूत्र इञ् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्यार्थ में अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय हो। जैसे—कार्त्रस्यापत्यं कार्त्रायणिः; हार्त्रायणिः; यास्कायनिः इत्यादि।

यहां 'अणन्त' इसलिये है कि—दाक्षायणः, यहां न हो। और 'द्व्यच्' इसलिये कहा है कि—औपगविः, यह भी फिञ् न होवे ॥२४१॥

वा०—त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः[1] **॥२४२॥**

अपत्य अर्थ में त्यदादि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—त्यादायनिः, त्यादः; यादायनिः, यादः; तादायनिः, तादः इत्यादि ॥२४२॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥२४३॥ —अ० ४। १। १५७॥

यह भी इञ् आदि का बाधक है। अपत्यार्थ में गोत्रभिन्न वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में फिञ्

१. यह वार्त्तिक अण् प्रत्यय का बाधक है। और इसमें अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि फिञ् किसी सूत्र वार्त्तिक से प्राप्त नहीं। फिञ् के विकल्प से पक्ष में अण् भी हो जाता है॥

प्रत्यय होवे । जैसे—आम्रगुप्तस्यापत्यं आम्रगुप्तायनिः; शालगुप्तायनिः; ग्रामरक्षायणिः; नापितायनिः इत्यादि ।

यहां 'उत्तरदेशीय आचार्य्यों का मत' इसलिये कहा है कि—आम्रगुप्तिः यहां फिञ् न होवे । 'वृद्ध संज्ञक' इसलिये है कि—याज्ञदत्तिः, यहां भी न हो । और 'गोत्र का निषेध' इसलिये है कि—औपगविः, यहां भी न होवे ।।२४३।।

वाकिनादीनां कुक् च ।।२४४।। —अ० ४ । १ । १५८ ।।

उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में अपत्य अर्थ में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय, और इनको कुक् का आगम भी होवे । जैसे—वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः; पक्ष में वाकिनिः; गारेधकायनिः, गारेधिः इत्यादि ।

यह अण् और इञ् दोनों का अपवाद है ।।२४४।।

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ।।२४५।। —अ० ४ । १ । १५९ ।।

यह अण् का अपवाद और इसमें अप्राप्तविभाषा है ।

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में पुत्रान्त प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय और इनको कुक् का आगम विकल्प करके होवे । जैसे—गार्गीपुत्रस्यापत्यं गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः; वात्सीपुत्रकायणिः, वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिः[1] इत्यादि ।।२४५।।

---

१. यहां (उदीचां वृद्धा०) इससे फिञ् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर फिर "कुक्' का आगम विकल्प से होने के लिये यह सूत्र है । एक कुक् के आगम का विकल्प, और उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में फिञ् का विकल्प इन दो विकल्पों से तीन प्रयोग होते हैं ।।

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ।।२४६।।

—अ० ४ । १ । १६० ।।

अपत्यार्थ और प्राचीन आचार्यों के मत में वृद्धसंज्ञारहित प्रातिपदिक से फिन् प्रत्यय बहुल करके हो जावे। जैसे—ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः; अहिचुम्बकायनिः।

यहां 'प्राचीनों का ग्रहण इसलिये है कि—ग्लौचुकिः, आहिचुम्बकिः, यहां इञ् हो जाता है। और 'वृद्ध का निषेध' इसलिये किया है कि—राजदन्तिः, यहां फिन् न होवे ।। २४६ ।।

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ।।२४७।।

—अ० ४ । १ । १६१ ।।

जाति अर्थ हो, तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय और मनु शब्द को षुक् का आगम हो जावे। जैसे—मानुषः, मनुष्यः।

यहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता है। यहां अपत्य अर्थ की विवक्षा नहीं है। और जहां अपत्य अर्थ विवक्षित होता है, वहां अण् ही हो जाता है। जैसे—मनोरपत्यं मानवी प्रजा ।। २४७ ।।

का०—अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ।।२४८।।

मूढ निन्दित अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय का स्मरण करना चाहिये। अर्थात् अण् प्रत्यय हो जावे और मनु शब्द के नकार को णत्व होवे। जैसे—मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो माणवः ।। २४८ ।।

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥२४९॥

—अ० ४ । १ । १६२ ॥

जो पौत्रप्रभृति अर्थात् नाती से आदि लेकर अपत्य नाम सन्तान होता है, वह गोत्रसंज्ञक होवे। जैसे—गर्गस्याऽपत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः; वात्स्यः।

यहां 'पौत्रप्रभृति' इसलिये कहा है कि—अनन्तरापत्य अर्थात् पुत्र अर्थ में गोत्र का प्रत्यय न होवे। जैसे—कौञ्जिः; गार्गिः[1] इत्यादि ॥ २४९ ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥२५०॥ —अ० ४ । १ । १६३ ॥

जो उत्पत्ति का प्रबन्ध है सो वंश, और जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है।

जब तक पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष जीवते हों, तब तक जो पौत्र आदि सन्तानों के अपत्य हैं, वे युवसंज्ञक होवें।

यहां तु शब्द निश्चयार्थ है कि उस समय युवसंज्ञ ही हो, गोत्रसंज्ञा न हो। जैसे—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः इत्यादि ॥२५०॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥२५१॥ —अ० ४ । १ । १६४ ॥

जो बड़ा भाई जीता हो और पिता आदि मर भी गये हों, तो छोटे भाई की युवसंज्ञा जाननी चाहिए। जैसे—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाक्षायणः; प्लाक्षायणः इत्यादि ॥२५१॥

---

१. यहां गोत्र में कुञ्ज शब्द से च्फञ्, और गर्ग शब्द से यञ् विहित हैं, सो नहीं होते। अनन्तरापत्य में इञ् हो जाता है॥

वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति[1] ॥२५२॥

जो भ्राता से अन्य सात पीढ़ी में चाचा दादा आदि अधिक अवस्थावाले पुरुष जीते हों, तो भी पौत्रप्रभृति के अपत्यों की विकल्प करके युवसंज्ञा होवे। जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यो वा गार्ग्यायणः; वात्स्यो वा वात्स्यायनः; दाक्षिर्वा दाक्षायणः इत्यादि ॥ २५२ ॥

वा०—वृद्धस्य च पूजायाम् ॥२५३॥

वृद्ध अर्थात् जिस प्रशंसित की वृद्धसंज्ञा विधान की है, सो भी पूजा अर्थ में विकल्प करके युवसंज्ञक होवे जैसे—तत्रभवान् गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वा; तत्रभवान् वात्स्यायनः, वात्स्यो वा; तत्रभवान् दाक्षायणः, दाक्षिर्वा इत्यादि।

यहां पूजाग्रहण इसलिये है कि—गार्ग्यः, यहां युवसंज्ञा न हो ॥ २५३ ॥

वा०—यूनश्च कुत्सायाम् ॥२५४॥

कुत्सा नाम निन्दा अर्थ में युवा की युवसंज्ञा विकल्प करके होवे। जैसे—गार्ग्यो जाल्मः, गार्ग्यायणो वा; वात्स्यो

---

१. यहां जीवति शब्द की अनुवृत्ति (जीवति तु०) इस पूर्व सूत्र से चली आती, फिर जीवति शब्द का ग्रहण इसलिये है कि संज्ञी का विशेषण यह जीवति होवे। और पूर्व का जो जीवति है, वह सपिण्ड का विशेषण समझना चाहिये ॥

२. (वृद्धस्य च०) और (यूनश्च०) ये दोनों काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे और व्याख्यात भी हैं, परन्तु महाभाष्य में वार्त्तिकरूप से इनका व्याख्यान किया है, इसलिये यहां वार्त्तिक ही लिखे हैं ॥

जाल्मः; वात्स्यायनो वा; दाक्षिजाल्मः, दाक्षायणो वा इत्यादि ॥ २५४ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्[1] **॥२५५॥**

—अ० ४। १। १६८ ॥

जो क्षत्रियवाची जनपद शब्द हो, तो उससे अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पाञ्चालः; ऐक्ष्वाकः; वैदेहः इत्यादि।

यहां 'जनपद शब्द से' इसलिये कहा है कि—द्रुह्योरपत्यं द्रौह्यवः; पौरवः, यहां अञ् न होवे। 'क्षत्रियवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—ब्राह्मणस्य पाञ्चालस्यापत्यं पाञ्चालिः; वैदेहिः, इत्यादि में भी अञ् प्रत्यय न होवे ॥ २५५ ॥

वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात् तस्य राजन्यापत्यवत्[2] **॥२५६॥**

जो क्षत्रिय के तुल्य जनपदवाची शब्द है, उससे राजा के सम्बन्ध में अपत्य के तुल्य प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्चालानां राजा पाञ्चालः; वैदेहः; मागधः[3] इत्यादि ॥ २५६ ॥

---

१. यह जनपद शब्द मुख्य देश का पर्य्यायवाची है, सो इससे देशविशेष पञ्चाल आदि का ग्रहण होता है। वे पञ्चाल आदि शब्द क्षत्रियों और देशविशेष के नाम एक ही से बने रहते हैं ॥

२. यहां तक अपत्याधिकार केवल चला आता है। अब जो देशविशेष और क्षत्रियविशेष के नाम पञ्चाल आदि शब्द हैं, उन देश के नामों से तद्राज अर्थात् उन देशों का राजा इस अर्थ में, और क्षत्रियवाची शब्दों से अपत्य अर्थ में यहां से पाद के अन्त पर्य्यन्त प्रत्ययविधान समझना चाहिए ॥

३. इन पञ्चाल आदि शब्दों से तद्राज अर्थ में (अवृद्धादपि०) इस सूत्र से शैषिक वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उनका अपवाद यहां अञ् विधान है ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ।।२५७।।

—अ० ४ । १ । १६९ ।

यह वक्ष्यमाण ञ्यङ् प्रत्यय का अपवाद है ।

अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्वेय और गान्धारि इन शब्दों से अञ् प्रत्यय होवे । जैसे—साल्वेयानामपत्यं तेषां राजा वा साल्वेयः; गान्धारः ।। २५७ ।।

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ।।२५८।।

—अ० ४ । १ । १७० ।।

अपत्य और तद्राज अर्थ में क्षत्रियवाची दो स्वर वाले शब्द मगध कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे । जैसे—अङ्गानामपत्यं तेषां राजा वा आङ्गः; वाङ्गः; मागधः; कालिङ्गः; सौरमसः इत्यादि ।। २५८ ।।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ।।२५९।।

—अ० ४ । १ । १७१ ।।

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची वृद्धसंज्ञक इकारान्त कोसल और अजाद प्रातिपदिक से ञ्यङ् प्रत्यय होवे ।

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । जैसे—वृद्ध—आम्बष्ठानामपत्यं तेषां राजा वा आम्बष्ठ्यः; सौवीर्य्यः । इकारान्त—आवन्त्यः; कौन्त्यः । कौसल्यः; आजाद्यः[1] ।। २५९ ।।

---

१. यहां इकार में 'तपरकरण' इसलिये है कि जो कुमारी जनपद शब्द दीर्घ ईकारान्त है उस से ञ्यङ् प्रत्यय न होवे, किन्तु अञ् प्रत्यय हो जावे । जैसे—कौमारः ।।

वा०—पाण्डोर्जनपदशब्दात् क्षत्रियशब्दाड् ड्यण् वक्तव्यः ।।२६०।।

जो जनपदवाची पाण्डु क्षत्रिय शब्द है, उससे अपत्य और तद्राज अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होवे । जैसे—पाण्डूनामपत्यं तेषां राजा वा पाण्ड्यः ।। २६० ।।

कुरुनादिभ्यो ण्यः ।।२६१।। —अ० ४ । १ । १७२ ।।

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची कुरु और नकारादि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे । यह अण् और अञ् का अपवाद है । जैसे—कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा कौरव्यः । नकारादि—नैषध्यः; नैपथ्यः इत्यादि ।। २६१ ।।

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ।।२६२।।
—अ० ४ । १ । १७३ ।।

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्व नाम देशविशेष के अवयव प्रत्यग्रथ कलकूट और अश्मक प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होवे । जैसे—औदुम्बरिः; तैलखलिः; माद्रकारिः; यौगन्धरिः; भौलिङ्गिः; शारदण्डिः; प्रात्यग्रथिः; कालकूटिः; आश्मकिः इत्यादि ।। २६२ ।।

ते तद्राजाः ।।२६३।। —अ० ४ । १ । १७४ ।।

(जनपदशब्दात्०) इस सूत्र से लेके यहां तक जो जो प्रत्यय कहे हैं, वे तद्राजसंज्ञक होते हैं । इसका यह प्रयोजन है कि बहुवचन में लुक् होजावे । जैसे—पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः इत्यादि ।। २६३ ।।

कम्बोजाल्लुक् ॥२६४॥ —अ० ४ । १ । १७५ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में कम्बोज शब्द से विहित जो अञ् प्रत्यय उसका लुक् हो। जैसे—कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा कम्बोजः ॥ २६४ ॥

वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥२६५॥

कम्बोज शब्द से जो लुक् कहा है, सो कम्बोज आदि से कहना चाहिये। जैसे—कम्बोजः; चोलः; केरलः; शकः; यवनः ॥ २६५ ॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥२६६॥

—अ० ४ । १ । १७६ ॥

जो स्त्री अपत्य वा राज्ञी अभिधेय हो, तो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्द से जो उत्पन्न तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो। जैसे—अवन्तीनामपत्यं तेषां राज्ञी अवन्ती; कुन्ती; कुरूः।

यहां 'स्त्री' ग्रहण इसलिये है कि—आवन्त्यः; कौन्त्यः; कौरव्यः[1]. यहां लुक् न होवे ॥ २६६ ॥

अतश्च[2] ॥२६७॥ —अ० ४ । १ । १७७ ॥

---

१. यहां अवन्ति और कुन्ति शब्द से इकारान्त के होने से (वृद्धेत्को०) इस से ञ्यङ्, और कुरु शब्द से ण्य प्रत्यय (कुरुना०) इस उक्त सूत्र से हो जाते हैं ॥

२. इस सूत्र में तदन्तविधि अर्थात् अकारान्त प्रत्यय का लुक् इसलिये नहीं होता कि पूर्व सूत्र में अवन्ति आदि शब्दों से लुक् कहा है, वही ज्ञापक है। जो यहां अदन्त का लुक् होवे, तो पूर्व सूत्र में लुक् व्यर्थ हो जावे ॥

जो स्त्रीवाच्य हो, तो तद्राजसंज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—मद्राणामपत्यं तद्राज्ञी वा मद्री; शूरसेनी इत्यादि।

यहां जातिवाची से (जातेरस्त्री०) इस करके ङीष् प्रत्यय हो जाता है ॥ २६७ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥२६८॥

—अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेषनाम भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् न होवे। जैसे—प्राच्य—अङ्गानामपत्यं तद्राज्ञी वा आङ्गी; वाङ्गी; मागधी इत्यादि। भर्गादि—भार्गी; कारूषी; कैकयी इत्यादि। यौधेयादि—यौधेयी; शौभ्रयी; शौक्रेयी इत्यादि ॥ २६८ ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयः पादः—

तेन रक्तं रागात् ॥२६९॥ —अ० ४ । २ । १ ॥

यहां समर्थों का प्रथम आदि सब की अनुवृत्ति चली आती है।

तृतीयासमर्थ रङ्गवाची प्रातिपदिक से रंगा है, इस अर्थ में जिस से जो प्रत्यय प्राप्त हो वह हो जावे। जैसे—**कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम्**; काषायम्; माञ्जिष्ठम् इत्यादि।

यहां 'रंग वाची' का ग्रहण इसलिये है कि—**देवदत्तेन रक्तं** वस्त्रम्, यहां प्रत्यय की उत्पत्ति न होवे ॥ २६९ ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ॥२७०॥ —अ० ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्वसूत्र के सब पदों की अनुवृत्ति चली आती है। लाक्षादि और रोचन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम्; रौचनिकम्।

अधिकार होने से अण् प्रत्यय पाता है, उसका बाधक यह सूत्र है ॥ २७० ॥

वा०—ठक्प्रकरणे शकलकर्द्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥२७१॥

अण् का ही अपवाद यह भी वार्तिक है। शकल और कर्द्दम प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—शकलेन रक्तं शाकलिकम्; कार्द्दमिकम् ॥ २७१ ॥

वा०—नील्या अन् ॥२७२॥

नीली प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय होवे। जैसे—नील्या रक्तं नीलम् ॥ २७२ ॥

वा०—पीतात्कन् ॥२७३॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे—पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ २७३ ॥

वा०—हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥२७४॥

हरिद्रा और महारजना प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—हरिद्रया रक्तं हारिद्रम्[1], माहारजनम् ॥ २७४ ॥

---

१. 'हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ' हरिद्रा से रङ्गे हुए के समान मुर्गे के पग हैं। इस प्रयोजन में उपमानवाची मान के अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥२७५॥ —अ० ४ । २ । ३ ॥

युक्त काल अर्थ जो अभिधेय हो, तो तृतीयासमर्थ नक्षत्र-विशेषवाची प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे । जैसे—**पुष्येण युक्तः कालः** = **पौषी रात्रिः; पौषमहः; माघी रात्रिः; माघमहः** इत्यादि ।

यहां 'नक्षत्रवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—**चन्द्रमसा युक्ता रात्रिः;** यहां प्रत्यय न होवे ॥ २७५ ॥

लुबविशेषे ॥२७६॥ —अ० ४ । २ । ४ ॥

जहां काल का अवयवरूप कोई विशेष अर्थ विहित न हो, वहां पूर्व सूत्र से जो विहित प्रत्यय उसका लुप् हो जावे । जैसे—पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः; अद्य कृतिका; **अद्य रोहिणी** ।

यहां 'अविशेष' इसलिये कहा है कि—**पौषी रात्रिः; पौषमहः,** यहां लुप् न होवे ॥ २७६ ॥

दृष्टं साम ॥२७७॥ —अ० ४ । २ । ७ ॥

सामवेद का देखना अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ हो, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से अण् आदि यथा प्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—वसिष्ठेन दृष्टं साम वासिष्ठम्; वैश्वामित्रम् देवेन दृष्टं साम देव्यं दैवं वा; प्रजापतिना दृष्टं साम प्राजापत्यम् इत्यादि ॥ २७७ ॥

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्[1] **॥२७८॥**

---

१. इस वार्त्तिक को काशिका आदि पुस्तकों में (अग्नेर्ढक) इतना सूत्र लिखा है । फिर वार्त्तिक भी ऐसा ही लिखा है, सो महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण अवद्य जानना चाहिये ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं, वे इस वार्त्तिक में **सर्वत्र** शब्द से विवक्षित हैं।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और कलि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्निना दृष्टं सामाग्नेयम्; अग्नेरागतमाग्नेयम्; अग्नेः स्वमाग्नेयम्; अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम् इत्यादि। इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम्, इत्यादि भी समझो ॥२७८॥

का०-दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥२७९॥

सामवेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित्-संज्ञक होवे। जैसे—उशनसा दृष्टं साम औशनसम्, औशनम्। यहां डित् पक्ष में टि का लोप हो जाता है।

तथा (तत्र जातः) इस आगामी प्रकरण में अपने अपवाद का अपवाद होके फिर विधान किया अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् होवे। जैसे—शतभिषजि जातः शातभिषजः, शातभिषः। डित् का प्रयोजन यहां भी पक्ष में टि लोप है। यहां शतभिषज् नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय होकर उसका अविशेष अर्थ में लुप् हो जाता है, पीछे शैषिक जात अर्थ में अण् का बाधक कालवाची से ठञ् प्राप्त होता है, फिर ठञ् का बाधक (सन्धिवेला०) इससे अण् विधान किया है।

तीयप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ईकक् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वैतीयीकम्; तार्तीयीकम्। और विद्यावाची तीयप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ईकक् न होवे। जैसे—द्वितीया विद्या; तृतीया विद्या।

और गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सामवेद के देखने अर्थ में अङ्क आदि अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं, वे यहां भी होवें। जैसे—(गोत्रचरणा०) इस सूत्र से गोत्रवाची शब्दों से अङ्क अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, वैसे ही यहां भी होवे। जैसे—गार्ग्येण दृष्टं साम गार्ग्यकम्; वात्स्यकम्, औपगवेन दृष्टं साम औपगवकम्; कापटवकम् इत्यादि ॥ २७९ ॥

परिवृतो रथः ॥२८०॥ —अ० ४ । २ । ९ ॥

जो परिवृत अर्थात् किसी चाम आदि से मढ़ा रथ आदि यान अर्थ वाच्य हो, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—चर्मणा परिवृतो रथश्चार्मणः; काम्बलः; वास्त्रः इत्यादि।

यहां 'रथ' का ग्रहण इसलिये किया है—वस्त्रेण परिवृतं शरीरम्, यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८० ॥

कौमाराऽपूर्ववचने ॥२८१॥ —अ० ४ । २ । १२ ॥

पूर्व जिसका किसी के साथ विवाहविषयक कथन भी न हुआ हो, उस अपूर्ववचन अर्थ में कुमारी शब्द से अण् प्रत्ययान्त कौमार निपातन किया है ॥ २८१ ॥

वा०—कौमारापूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे ॥२८२॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री और पुल्लिङ्ग में कौमार शब्द निपातन किया है। जैसे—अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्त्ता; अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्य्या[1] ॥ २८२ ॥

---

१. इस वार्तिक का प्रयोजन यह है कि प्रत्यय विधान तो कुमारी शब्द से ही होवे, परन्तु प्रत्ययार्थ दोनों लिङ्ग में रहे। अपूर्ववचन अर्थ

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥२८३॥ —अ० ४ । २ । १३ ॥

उद्धृत अर्थात् रखने अर्थ में सप्तमीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे । जैसे—पञ्चकपालेषूद्धृत ओदनः पञ्चकपालः[१] शरावेषूद्धृतः शारावः इत्यादि ।

यहां 'पात्रवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—पाणावुद्धृत ओदनः, यहाँ प्रत्यय न होवे ॥२८३॥

सास्मिन् पौर्णमासीति ॥२८४॥ —अ० ४ । २ । २० ॥

अधिकरण अर्थ वाच्य होवे, तो पौर्णमासी विशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी, पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स पौषो मासः; पौषोऽर्धमासः; पौषः संवत्सरः । इस प्रकार— मघानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी माघी, साऽस्मिन्वर्त्तत इति माघो मासः; फाल्गुनः; चैत्रः; वैशाखः; ज्यैष्ठः; आषाढः; श्रावणः; भाद्रपदः; आश्विनः; कार्त्तिकः; मार्गशीर्षः ।

इस सूत्र में 'इतिकरण' से संज्ञाग्रहण का प्रयोजन सूत्रकार का है ॥२८४॥

का सम्बन्ध कुमारी के साथ ही रहे। जैसे—पूर्व जिस का कोई पति कहने मात्र भी न हुआ हो, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पुरुष कौमार, और वैसी ही कुमारी पति को प्राप्त हुई कौमारी ॥

१. यहां पञ्चकपाल शब्द में (द्विगोर्लुगनपत्ये) इस पूर्वलिखित सूत्र से प्राग्दीव्यतीय अनपत्य प्रत्यय का लुक् द्विगु संज्ञा के होने से हो जाता है ॥

वा० -साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम्[1] ॥२८५॥

(साऽस्मिन्०) इस सूत्र में संज्ञाग्रहण करना चाहिये । अर्थात् जहां प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से महीनों की संज्ञा प्रकट हो, वहीं प्रत्यय होवे । और—पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पञ्चदशरात्रे, यहां प्रत्यय न हो ॥२८५॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥२८६॥ —अ० ४ । २ । २१ ॥

यह सूत्र पूर्वसूत्र से प्राप्त अण् का अपवाद है ॥

पौर्णमासी समानाधिकरण अग्रहायणी और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स आग्रहायणिको मासः अर्द्धमासो वा; आश्वत्थिकः ॥२८६॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः[2] ॥२८७॥

—अ० ४ । २ । २२ ॥

पौर्णमासी समानाधिकरण फाल्गुनी श्रवणा[3] कार्तिकी और चैत्री प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में विकल्प करके ठक् प्रत्यय

---

१. काशिका आदि पुस्तकों में संज्ञाग्रहण सूत्र में ही मिला दिया है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि वार्त्तिक पढ़ने से । और यहां कैयट ने भी लिखा है कि—"संज्ञाग्रहणं सूत्रेऽनार्षमिति वार्त्तिकमारब्धम्" ॥

२. इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिए है कि ठक् किसी से प्राप्त नहीं, अण् प्राप्त है, उसी का यह अपवाद है ॥

३. नक्षत्रवाची श्रवणा शब्द से युक्त काल अर्थ में (संज्ञायां श्रवणा० ४ । २ । ५) इस सूत्र से प्रत्यय का लुप् हो जाता है, पौर्णमासी का विशेषण प्रत्ययार्थ बना रहता है ॥

हो, और पक्ष में अण् हो जावे। जैसे—फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स फाल्गुनिको मासः, फाल्गुनो मासः; श्रावणिको मासः, श्रावणो मासः; कार्तिकिको मासः, कार्तिको मासः; चैत्रिको मासः, चैत्रो मासः ॥२८७॥

साऽस्य देवता ॥ २८८॥ —अ० ४। २। २३॥

शेषकारक वाच्य हो, तो प्रथमासमर्थ देवताविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथायोग्य प्रत्यय हो। जैसे—प्रजापतिर्देवताऽस्य प्राजापत्यम्[१]; इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः, ऐन्द्रो मन्त्रः, ऐन्द्री ऋक् इत्यादि ॥२८८॥

कस्येत् ॥२८९॥ —अ० ४। २। २४॥

यहाँ पूर्वसूत्र से अण् प्रत्यय हो ही जाता, फिर इकारादेश होने के लिए यह सूत्र है।

देवता समानाधिकरण क प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय और प्रकृति को इकारादेश भी होवे। जैसे—को देवताऽस्य कायं हविः, कायो मन्त्रः, कायी ऋक्।

यहाँ 'इत् में तपरकरण' तत्काल का बोध होने के लिये है ॥२८९॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥२९०॥ —अ० ४। २। ३०॥

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण वायु ऋतु पितृ और उषस् प्रातिपदिकों से, षष्ठी के अर्थ में अण् का बाधक यत् प्रत्यय

१. यहां अण् का अधिकार भी है, तथाऽपि उसको बाध कर (दित्यदित्या०) इस सूत्र से पत्युत्तरपद प्रातिपदिक से ण्य प्रत्यय हो जाता है॥

होवे । जैसे—वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्; ऋतव्यम्; पित्र्यम्; उषस्यम् ।।२९०।।

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ।।२९१।। —अ० ४ । २ । ३१ ।।

यहां यत् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र से चली आती है ।

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण द्यावापृथिवी आदि प्रातिपदिकों से, षष्ठी के अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होवें । जैसे—द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्; शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्; मरुत्वतीयम्, मरुत्वत्यम्, अग्नीषोमीयम्, अग्नीषोम्यम्; वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम्; गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम् ।।२९१।।

कालेभ्यो भववत् ।।२९२।। —अ० ४ । २ । ३३ ।।

(तत्र भवः) इस अधिकार में जिस कालवाची प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है, वही यहां देवता समानाधिकरण काल विशेषवाची प्रातिपदिक से होवे । जैसे—संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः, यहाँ सामान्य कालवाची से ठञ् है; प्रावृट् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः, यहाँ ण्य; ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मम्, ग्रीष्म शब्द का उत्सादिकों में पाठ होने से अञ् होता है । इत्यादि प्रकरण की योजना करलेनी चाहिये ।।२९२।।

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ।।२९३।।—अ० ४ । २ । ३४ ।।

देवता समानाधिकरण महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो । जैसे—महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्; प्रौष्ठपदिकम् ।।२९३।।

वा०—ठञ् प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् ॥२९४॥

काल अधिकरण अभिधेय होवे, तो नवयज्ञादि प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः पाकयज्ञिकः; इत्यादि ॥२९४॥

वा०—पूर्णमासादण् ॥२९५॥

पूर्व वार्त्तिक से कालाधिकरण की अनुवृत्ति आती है। कालाधिकरण अर्थ में पूर्णमास प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्त्तते इति पौर्णमासी तिथिः, यहां अपने अपवाद ठञ् को बाध के अण् है ॥२९५॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥२९६॥

—अ० ४। २। ३५॥

भ्राता अर्थ वाच्य हो, तो पितृ और मातृ शब्दों से व्यत् तथा डुलच् प्रत्यय यथासंख्य करके निपातन किये हैं। जैसे—पितुर्भ्राता पितृव्यः मातुर्भ्राता मातुलः। पिता का भाई 'पितृव्य' और माता का भाई 'मातुल' कहाता है।

और मातृ तथा पितृ प्रातिपदिकों से पिता अर्थ में डामहच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—मातुः पिता मातामहः; पितुः पिता पितामहः। माता का पिता मातामह=नाना, और पिता का पिता पितामह=दादा कहाते हैं ॥२९६॥

वा०—मतिरि षिच्च ॥२९७॥

मातृ अर्थ अभिधेय होवे, तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा डामहच् प्रत्यय षित् हो जावे। जैसे—मातुर्माता मातामही;

पितुर्माता पितामही। माता की माता नानी और पिता की माता दादी।

यहां 'षित्' करने का प्रयोजन यह है कि—स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो जावे ॥२९७॥

वा०—अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचः ॥२९८॥

अवि प्रातिपदिक से दुग्ध अर्थ में सोढ दूस और मरीसच् प्रत्यय होवें। जैसे—अवेर्दुग्धमविसोढम्; अविदूसम्; अविमरीसम् ॥२९८॥

वा०—तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ ॥२९९॥

निष्फल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिञ्ज और पेज प्रत्यय होवें। जैसे—निष्फलं तिलं तिलपिञ्जम्; तिलपेजम्॥२९९॥

वा०—पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥३००॥

पूर्वोक्त पिञ्ज प्रत्यय वैदिकप्रयोग विषय में डित् होवे। जैसे—तिलपिञ्जं दण्डानतम्, यहां डित् होने से टिसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है ॥३००॥

तस्य समूहः ॥३०१॥ —अ० ४। २। ३६॥

यह अधिकार सूत्र है। षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्; स्त्रीणा समूहः स्त्रैणम्; पौंस्नम् इत्यादि ॥३०१॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥३०२॥ —अ० ४। २। ३८॥

षष्ठीसमर्थ जो गोत्रवाची उक्ष उष्ट्र उरभ्र राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य और अज प्रातिपदिक हैं, उन से समूह अर्थ में अण् का बाधक वुञ् प्रत्यय होवे।

जैसे—ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्; गार्ग्यकम्; वात्स्यकम्; गार्ग्यायणकम्[1] इत्यादि। उक्ष्णां समूह औक्षकम्; औष्ट्रकम्; औरभ्रकम्, राजकम्; राजन्यकम्; राजपुत्रकम्; वात्सकम्; मानुष्यकम्[2]; आजकम् ॥३०२॥

वा०—वृद्धाच्च ॥ ३०३ ॥

वृद्ध शब्द से भी समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो। जैसे—वृद्धानां समूहो वार्द्धकम् ॥३०३॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥ ३०४ ॥

—अ० ४। २। ४१॥

ब्राह्मण माणव और बाडव प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय होवे। जैसे—ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्; माणव्यम्; बाडव्यम् ॥३०४॥

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसङ्ख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पृष्ठ शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यम् ॥३०५॥

---

१. यहां महाभाष्य के प्रमाण से लोक में युवा को भी गोत्र कहते हैं। इसलिये युव प्रत्ययन्त को गोत्र मान के गार्ग्यायण आदि शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है॥

२. यहां राजन्य और मनुष्य शब्द के यकार का लोप प्राप्त है, सो (प्रकृत्या के०) इस वार्त्तिक से प्रकृतिभाव हो जाने से लोप नहीं होता॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ३०६ ॥—अ० ४ । २ । ४२ ॥

समूह अर्थ में ग्राम जन और बन्धु प्रातिपदिकों से तल् प्रत्यय होवे । जैसे—ग्रामाणां समूहो ग्रामता; जनता; बन्धुता ॥३०६॥

वा०—गजसहायाभ्यां च ॥ ३०७ ॥

गज और सहाय प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होवे । जैसे गजानां समूहो गजता; सहायता ।

इस वार्तिक का सहाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में मिला दिया है ॥३०७॥

वा०—अह्नः खः क्रतौ ॥ ३०८ ॥

यज्ञ अर्थ में अहन् प्रातिपदिक से **ख** प्रत्यय हो । जैसे—अह्नां समूहोऽह्नीनः क्रतुः ॥३०८॥

वा०—पर्श्वा णस् ॥ ३०९ ॥

पर्शु प्रातिपदिक से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय होवे । जैसे—पर्शूनां समूहः पार्श्वम् ।

णस् प्रत्यय में सित्करण के होने से पदसंज्ञा होकर भसंज्ञा का कार्य्य उवर्णान्त अङ्ग को गुण नहीं होता ॥३०९॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ३१० ॥ —अ० ४ । २ । ४३ ॥

अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । जैसे—कुमारीणां समूहः कौमारम्; कैशोरम्; बाधूटम्; चैरण्टम्; कपोतानां समूहः कापोतम्; मायूरम् इत्यादि ॥३१०॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ —अ० ४ । २ । ४४ ॥

खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे—खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्; बाडवम् इत्यादि। यह सूत्र ठक् का बाधक है ॥३११॥

वा०— अञ् प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥३१२॥

क्षुद्रक और मालव ये दोनों शब्द जनपद क्षत्रियवाची हैं। उनसे उत्पन्न हुए तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके अन्तोदात्तस्वर हो जाता है। फिर अनुदात्तादि के होने से अञ् प्रत्यय हो ही जाता, फिर गोत्रवाची से (गोत्रोक्षो०) इस से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उस का अपवाद अञ् विधान किया है।

और यह वार्त्तिक नियमार्थ भी है कि क्षुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा अर्थ ही में अञ् प्रयत्य होवे, अन्यत्र नहीं। जैसे—क्षौद्रकमालवी सेना। और जहां सेनासंज्ञा न हो, वहां क्षौद्रकमालवकम्; गोत्रवाची से वुञ् प्रत्यय हो जावे ॥३१२॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ३१३ ॥ —अ० ४ । २ । ४६ ॥

समूह अर्थ में चित्तवर्जित हस्ति और धेनु प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अपूपानां समूहः आपूपिकम्; शाष्कुलिकम्; साक्तुकम् इत्यादि। हास्तिकम्[1] धेनुकम् ॥३१३॥

---

१. यहां (प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गवि०) इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग हस्तिनी शब्द से भी प्रत्यय हो जाता है। जैसे—हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्। और (भस्याढे तद्धिते) इस वार्त्तिक से पुंवद्भाव होता है॥

विषयो देशे ॥ ३१४ ॥ —अ० ४। २। ५१॥

जो वह विषय देश होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—शिबीनां विषयो देशः शैबः; औष्ट्रः; पाशवः इत्यादि।

यहां 'देश' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः, यहां प्रत्यय न हो ॥३१४॥

सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ३१५ ॥

—अ० ४। २। ५५॥

संग्राम अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रयोजनवाची और योद्धृवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—भद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्य भाद्रः संग्रामः; सौभद्रः; गौरिमित्रः। योत्धृभ्यः—अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य स अहिमालः; स्यान्दनाश्वः; भारतः इत्यादि।

यहां 'संग्राम' का ग्रहण इसलिये है कि—सुभद्रा प्रयोजनमस्य दानस्य, यहां प्रत्यय न होवे। और 'प्रयोजनयोद्धृ' ग्रहण इसलिये है कि—सुभद्रा प्रेक्षिकाऽस्य संग्रामस्य, यहां भी न हो ॥३१५॥

तदधीते तद्वेद[1] ॥ ३१६ ॥ —अ० ४। २। ५८॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों में अण् प्रत्यय हो। जैसे—यश्छन्दोऽधीते वेद

१. इस सूत्र में दो वार तत् शब्द का पाठ इसलिये है कि एक शास्त्र को पढ़ रहा और दूसरा पढ़ा हुआ शास्त्र का वेत्ता, ये दोनों पृथक् पृथक् समझे जावें॥

वा स छान्दसः; व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः; नैरुक्तः; निमित्तानि वेद नैमित्तः; मौहूर्त्तः इत्यादि ।।३१६।।

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ।। ३१७ ।। —अ० ४ । २ । ५९ ।।

यह सूत्र अण् का बाधक है । क्रतुविशेषवाची उक्थ आदि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे ।

जैसे—क्रतुवाची—अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः; अश्वमेधमधीते वेद वा आश्वमेधिकः; वाजपेयिकः; राजसूयिकः । उक्थादि—उक्थं सामगानमधीते वेद वा औक्थिकः; लौकायतिकः इत्यादि । सूत्रान्त—योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः; गौभिलीयसूत्रिकः, श्रौतसूत्रिकः; पाराशरसूत्रिकः इत्यादि ।।३१७।।

वा०—विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः ।। ३१८ ।।

विद्या लक्षण कल्प और सूत्र ये चार शब्द जिनके अन्त में हों, और कल्प शब्द आदि में न होवे, ऐसे प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे ।

जैसे—विद्या—वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः, सार्पविद्यिकः । लक्षण—गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः; आश्वलक्षणिकः । कल्प—पराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पाराशरकल्पिकः; मातृकल्पिकः । सूत्र—वार्त्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्त्तिकसूत्रिकः; साङ्ग्रहसूत्रिकः इत्यादि ।

यहां 'अकल्पादि का निषेध' इसलिये है कि—कल्पसूत्रमधीते वेद वा काल्पसूत्र:, यहां ठक् न हो, किन्तु अण् प्रत्यय ही हो जावे ।।३१८।।

वा०--विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वा ॥ ३१९ ॥

अङ्ग क्षत्र धर्म और त्रि ये चार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे विद्या प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय न होवे, किन्तु अण् ही हो जावे। अन्य कोई शब्द पूर्व हो तो विद्या शब्द से ठक् ही हो, यह नियम इस वार्त्तिक से समझो। जैसे—अङ्गविद्यामधीते वेत्ति वा अाङ्गविद्य:; क्षात्रविद्य:; धार्मविद्य:; त्रैविद्य: ।।३१९।।

वा०--आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च ॥ ३२० ॥

आख्यान आख्यायिका इतिहास और पुराण इन चार के विशेषवाची प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो।

जैसे—आख्यान--यवक्रीतमधीते वेत्ति वा यावक्रीतिक:; प्रैयङ्गविक; यायातिक:। आख्यायिका—वासवदत्तामधीते वेद वा वासवदत्तिक:; सौमनोत्तरिक:। इतिहासमधीते वेद वा ऐतिहासिक:; पौराणिक: इत्यादि ।।३२०।।

का०--अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च ल:।

इकन् पदोत्तरपदत् शतषष्टे: षिकन् पथ: ॥ ३२१ ॥

अनुसू लक्ष्य और लक्षण ये तीनों ग्रन्थविशेषों के नाम हैं। इनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अनुस्वमधीते आनुसुक:, यहां (इसुसु०) इस सूत्र से प्रत्यय को ककारादेश हो जाता है। लक्ष्यमधीते वेद वा लाक्षियक:; लाक्षणिक:।

सर्व और स शब्द जिसके आदि में हों ऐसे द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—सर्ववेदमधीते वेत्ति वा सर्ववेदः; सर्वतन्त्रः। सवार्त्तिकमधीते वेद वा सवार्त्तिकः, ससङ्ग्रहः।

पद शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से इकन् प्रत्यय होवे। जैसे—पूर्वपदमधीते वेद वा पूर्वपदिकः; उत्तरपदिकः।

पथ शब्द जिनके अन्त में हो, ऐसे शत और षष्टि प्रातिपदिकों से षिकन् प्रत्यय हो। प्रत्यय में षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिए है। जैसे—शतपथमधीते वेत्ति वा शतपथिकः; शतपथिकी; षष्टिपथिकः, षष्टिपथिकी इत्यादि ॥३२१॥

प्रोक्ताल्लुक् ॥३२२॥ —अ० ४। २। ६३॥

अध्येतृ वेदितृ अर्थ में प्रोक्त प्रत्ययान्त से विहित तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमधीते वेद वा पाणिनीयः, पाणिनीया ब्राह्मणी; काशकृत्स्नेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना, यहां अनुपसर्जन के न होने से फिर ङीप् नहीं होता ॥३२२॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥३२३॥

—अ० ४। २। ६५॥

छन्द और ब्राह्मण ये दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त अध्येतृ वेदितृ प्रत्ययार्थविषयक हों, अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों के विना प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग न होवे। जैसे—कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते ते कठाः; मौदाः; पैप्पलादाः;

आचार्यिन:; वाजसनेयिन:। ब्राह्मण—ताण्डिन:; भाल्लविन:; शाटचायनिन:; एतरेयिण:।

यहां 'छन्दोब्राह्मण' ग्रहण इसलिये है कि—पाणिनीयं व्याकरणम्; पैङ्गी कल्प:; यहां तद्विषयता न होवे ॥३२३॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥३२४॥

—अ० ४। २। ६६॥

यह सूत्र मत्वर्थ प्रत्ययों का अपवाद है। जो देश का नाम होवे, तो अस्ति समानाऽधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्ति औदुम्बरो देश:; बाल्वज:; पार्वत:।

यहां 'तन्नाम' ग्रहण इसलिये है कि—गोधूमा: सन्त्यस्मिन् देशे, यहां प्रत्यय न होवे ॥३२४॥

तेन निर्वृत्तम् ॥३२५॥ —अ० ४। २। ६७॥

निर्वृत्त अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा; कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ॥३२५॥

तस्य निवास: ॥३२६॥ —अ० ४। २। ६८॥

जहां निवास देश अर्थ वाच्य हो, वहां षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—ऋजुनावान्निवासो देश आर्जुनावो देश:; शैब:; औदिष्ट:; उत्सस्य निवासो देश औत्स:; कौरव: इत्यादि ॥३२६॥

अदूरभवश्च ॥३२७॥ —अ० ४। २। ६९॥

अदूरभव अर्थात् समीप अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—विदिशाया अदूरभवं वैदिशं नगरम्;

हिमवतोऽदूरभवं हैमवतम्; हिमालयस्यादूरभवो देशो हैमालयः इत्यादि ।

इस सूत्र से आगे चारों अर्थों की अनुवृत्ति चलती है, इसी से यह प्रकरण चातुरर्थिक कहाता है ।।३२७।।

ओरञ् ।।३२८।। —अ० ४ । २ । ७० ।।

उक्त चारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो । जैसे—अरडु—आरडवम्; कक्षतु—काक्षतवम्; कर्कटेलु—कार्कटेलवम्; रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवो वा रौरवः; परशुना निर्वृत्तं पारशवम् इत्यादि ।।३२८।।

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ।।३२९।।

—अ० ४ । २ । ८० ।।

यह सूत्र अण् का अपवाद है। अरीहणादि सत्रह गणस्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में यथासंख्य करके वुञ् आदि सत्रह (१७) प्रत्यय होते हैं। आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ योग होता है ।

जैसे—अरीहणादिकों से वुञ्—आरीहणकम्; द्रौघणकम्; खदिराणामदूरभवं नगरम् खादिरकम् । कृशाश्व आदि से छण्—कार्शाश्वीयम्; आरिष्टीयः। ऋश्य आदि से क—ऋश्यकः; न्यग्रोधकः; शिरकः । कुमुद आदि से ठच्—कुमुदिकम्; शर्करिकम्; न्यग्रोधिकम् । काश आदि से इल—काशिलम्; वाशिलम् । तृण आदि से स—तृणसः; नडसः; बुससः । प्रेक्ष आदि से

इनि—प्रेक्षी; हलकी; बन्धुकी। अश्म आदि से र—अश्मरः; यूषरः; रूषरः; मीनरः। सखि आदि से ढञ्—साखेयम्; साखिदत्तेयम्। सङ्काश आजि से ण्य—साङ्काश्यम्; काम्पिल्यम्; सामीर्यम्। बल आदि से य—बल्यः; कुल्यम्। पक्ष आदि से फक्—पाक्षायणः; तौषायण; आण्डायनः। कर्ण आदि से फिञ्—कार्णायनिः, वासिष्ठायनिः। सुतङ्गम् आदि से इञ् सौतङ्गमिः, मौनचित्तिः; वैप्रचित्तिः। प्रगदिन् आदि से ञ्य—प्रागद्यम्; मागद्यम्; शारद्यम्। वराह आदि से कक्—वाराहकम्; पालाशकम्। और कुमुदादिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—कौमुदिकम्; गौमथिकम् इत्यादि ।।३२९।।

जनपदे लुप् ।।३३०।। —अ० ४।२।८१ ।।

जहां जनपद अर्थात् देश अभिधेय रहे, वहां उक्त चार अर्थों में जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय होता है, उस का लुप् हो। जैसे—पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः; कुरवः; मत्स्याः; अङ्गाः; वङ्गाः; मगधाः; पुण्ड्राः[१] इत्यादि ।।३३०।।

शेषे ।।३३१।। —अ० ४।२।९२ ।।

यह अधिकार सूत्र है, इस का अधिकार (तस्येदम्) इस आगामी सूत्रपर्यन्त जाता है। अपत्य आदि और उक्त चार अर्थों से जो भिन्न अर्थ हैं, सो शेष कहाते हैं।

इस सूत्र से आगे जो जो प्रत्यय विधान करें सो-सो शेष अर्थों में जानो। और यह विधिसूत्र भी है। जैसे—चक्षुषा गृह्यते

१. यहां (लुपि युक्तव०) इस सूत्र से व्यक्तिवचन अर्थात् लिङ्ग और संख्या प्रत्यय होने से पूर्व के समान प्रत्यय लुप् के पश्चात् भी रहते हैं।।

चाक्षुषं रूपम्; श्रावणः शब्द; दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः; वितंडया प्रवर्त्तते वैतंडिकः; उलूखले क्षुण्णः औलूखलो यावकः अश्वैरुह्यते आश्वो रथः; चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् इत्यादि। यहां सर्वत्र यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं ।।३३१।।

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ।।३३२।।—अ० ४। २। ३९ ।।

राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ और **ख** प्रत्यय होवें। जात आदि शेष अर्थों में और उन उन अर्थों में जो जो समर्थविभक्ति हों सो सो सर्वत्र जाननी चाहिये। जैसे—राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः; **अवारपारीणः** ।।३३२।।

वा०—विगृहीतादपि ।।३३३।।

विगृहीत कहते हैं भिन्न-भिन्न को, अर्थात् अवारपार शब्दों से अलग अलग भी ख प्रत्यय हो। जैसे—अवारीणः; पारीणः ।।३३३।।

वा०—विपरीताच्च ।।३३४।।

पार पूर्व और अवार पर हो तो भी समस्त प्रातिपदिक से **ख होवे**। जैसे—पारावारीणः ।।३३४।।

ग्रामाद्यखञौ ।।३३५।। —अ० ४। २। ९४ ।।

जात आदि अर्थों में ग्राम प्रातिपदिक से य और खञ् प्रत्यय होवें। जैसे—ग्रामे जातो भवः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः; ग्रामीणः ।।३३५।।

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ।।३३६।।

—अ० ४। २। ९५ ।।

यह सूत्र दक्षिणा आदि अव्यय शब्दों से त्यप् प्राप्त है, उसका बाधक है ।

दक्षिणा आदि तीन अव्यय शब्दों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होवे । जैसे—दाक्षिणात्यः; पाश्चात्यः; पौरस्त्यः ॥३३६॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥३३७॥

—अ० ४ । २ । १०० ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् और प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में यत् प्रत्यय हो । जैसे—दिवि भवो दिव्यः; प्राग्भवं प्राच्यम्; अपाच्यम्; उदीच्यम्; प्रतीच्यम् ।

यह सूत्र अण् प्रत्यय का अपवाद है । और यहां प्राच् आदि अव्यय शब्दों का ग्रहण नहीं है, किन्तु यौगिकों का है । और जहां इनका अव्यय में ग्रहण होता है, वहां आगामी सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होता है । जैसे—प्राक्तनम्; प्रत्यक्तनम् इत्यादि ॥३३७॥

अव्ययात्त्यप् ॥३३८॥ —अ० ४ । २ । १०३ ॥

अव्यय प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में त्यप् प्रत्यय होवे । यह भी सूत्र अण् आदि अनेक प्रत्ययों का अपवाद है ।

यहां **महाभाष्यकार** ने परिगणन किया है कि अमा इह क्व तथा तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त इतने ही अव्ययों से त्यप् होवे । जैसे—अमात्यः; इहत्यः, क्वत्यः; ततस्त्यः; यतस्त्यः; तत्रत्यः; अत्रत्यः; कुत्रत्यः इत्यादि ।

यहां परिगणन का प्रयोजन यह है कि—औपरिष्टः; पौरस्तः; पारस्तः इत्यादि प्रयोगों में त्यप् न होवे ॥३३८॥

वा०—त्यब्नेध्रु'वे ॥३३९॥

नि अव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे। जैसे—निरन्तरं भवं नित्यं ब्रह्म ॥३३९॥

वा०—निसो गते ॥३४०॥

निस् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे। जैसे—
निर्गतो निष्टयः ॥३४०॥

वा०—अरण्याण्णः ॥३४१॥

अरण्य शब्द से शेष अर्थों में ण प्रत्यय होवे। जैसे—
अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः ॥३४१॥

वा०- दूरादेत्यः ॥३४२॥

दूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में एत्य प्रत्यय हो। जैसे—
दूरे लब्धो दूरेत्यः ॥३४२॥

वा०--उत्तरादाहञ् ॥३४३॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में आहञ् प्रत्यय हो। जैसे—उत्तरे जात औत्तराहः ॥३४३॥

वा०--अव्ययात्त्यप्याविष्टयस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥३४४॥

आविस् अव्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेदविषय में त्यप् प्रत्यय हो। जैसे—आविष्टयो वर्धते चारुराशु ॥३४४॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥३४५॥

—अ० १। १। ७३॥

जिस समुदाय के अचों के बीच में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो, अर्थात् आकार ऐकार और औकार होवें, तो वह समुदाय वृद्धसंज्ञक होवे ॥३४५॥

वृद्धाच्छः ॥३४६॥ —अ० ४ । २ । ११४ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है। शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त अण् आदि प्रत्यय हों। जैसे—शालीयः; मालीयः; औपगवीयः; कापटवीयः इत्यादि।

(अव्ययात्त्यप्; तीररूप्योत्तरपदा०; उदीच्यग्रामाच्च०; प्रस्थोत्तरपद०) जहां इन सूत्रों से ये प्रत्यय और वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है, वहां परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है।

जैसे—आरात् अव्यय शब्द है, उससे छ हुआ तो= आरातीयः। वायसतीर शब्द से अञ् और ञ्य भी पाते हैं, फिर छ ही होता है। जैसे—वायसतीरीयः। इसी प्रकार रूप्योत्तरपद माणिरूप्य वृद्ध प्रातिपदिक से परत्व से छ प्राप्त है, उसका भी अपवाद यकारोपध होने से (धन्वयोपधा०) इससे वुञ् होता है। जैसे—माणिरूप्यकः। वाडवकर्ष उदीच्यग्राम अन्तोदात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्व से होता है। जैसे—वाडवकर्षीयः। औलूक कोपध वृद्ध प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध करके छ होता है। जैसे—औलूकीयम् ॥३४६॥

अब इसके आगे वृद्धसंज्ञा में जो विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

वा०—वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ।।३४७।।

जो किसी मनुष्य आदि के नाम हैं, उनकी विकल्प करके वृद्धसंज्ञा होवे । जैसे—देवदत्तीयाः; दैवदत्ताः, यज्ञदत्तीयाः, याज्ञदत्ताः इत्यादि ।।३४७।।

वा०—गोत्रोत्तरपदस्य च ।।३४८।।

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिनके उत्तरपद में हों, उनकी वृद्धसंज्ञा हो । जैसे—घृतप्रधानो रौढिः घृतरौढिः, तस्य छात्राः घृतरौढीयाः, ओदनप्रधानः पाणिनिरोदनपाणिनिस्तस्य छात्रा ओदनपाणिनीयाः; वृद्धाम्भीयाः; वृद्धकाश्यपीयाः इत्यादि ।।३४८।।

वा०—जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ।।३४९।।

जिह्वाकात्य और हरितकात्य शब्दों की वृद्धसंज्ञा न हो । गोत्र उत्तरपद होने से पूर्ववार्त्तिक से प्राप्त है, उसका निषेध है। जैसे—जैह्वाकाताः; हारितकाताः ।।३४९।।

त्यदादीनि च ।।३५०।। —अ० १ । १ । ७४ ।।

और त्यद् आदि प्रातिपदिक भी वृद्धसंज्ञक होते हैं । जैसे—त्यदीयम्; यदीयम्; तदीयम्; एतदीयम्; इदमीयम्; अदसीयम्; त्वदीयम्; मदीयम्; त्वादायनिः; मादायनिः इत्यादि ।

यहां सर्वत्र वृद्धसंज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ।।३५०।।

भवतष्ठक्छसौ ।।३५१।। — अ० ४ । २ । ११५ ।।

शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से ठक् और छस् प्रत्यय हों । जैसे—भवत इदं भावत्कम्; छस् प्रत्यय में सित्करण पदसंज्ञा के लिये है—भवदीयम् ।

इस भवत् शब्द की त्यदादिकों से वृद्धसंज्ञा होके छ प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह बाधक है ।।३५१।।

रोपधेतोः प्राचाम् ।।३५२।। —अ० ४ । २ । १२३ ।।

शेष अर्थों में प्राग्देशवाची रेफोपध और ईकारान्त प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो । जैसे—पाटलिपुत्रकाः; ऐकचक्रकाः । ईकारान्त—काकन्दी—काकन्दकाः; माकन्दी—माकन्दकाः ।

यहां 'प्राचां' ग्रहण इसलिये है कि—दात्तामित्रीयः; यहां वुञ् प्रत्यय न हो ।।३५२।।

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ।।३५३।।

—अ० ४ । २ । १२५।।

शेष अर्थों में बहुवचनविषयक वृद्धसंज्ञारहित जो जनपदवाची और जनपद के अवधिवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो ।

[जैसे—] अवृद्ध जनपद से—अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः = आङ्गकः; वाङ्गकः; कालिङ्गकः । अवृद्ध जनपदावधि—अजमीढाः अजक्रन्दाः = आजमीढकः; आजक्रन्दकः । वृद्ध जनपद—दार्वाः, जाम्बाः = दार्वकः; जाम्बकः । वृद्ध जनपदावधि—कालिञ्जराः, वैकुलिशाः = कालिञ्जरकः; वैकुलिशकः ।।३५३।।

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ।।३५४।।

—अ० ४ । २ । १२८ ।।

कुत्सन और प्रावीण्य अर्थात् निन्दा और प्रशंसारूप शेष अर्थों में नगर प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो । [जैसे—] नागरकश्चौरः; नागरकः प्रवीणः ।

'कुत्सन और प्रवीणता' ग्रहण इसलिये है कि—नागरा ब्राह्मणाः, यहां वुञ् न हो ।।३५४।।

मद्रवृज्योः कन् ॥३५५॥ —अ० ४ । २ । १३१ ॥

शेष अर्थों में मद्र और वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । [जैसे—] मद्रेषु जातः मद्रकः, वृजिकः ।

यहां बहुवचनविषयक अवृद्ध जनपद शब्दों से वुञ् प्राप्त है, उस का यह अपवाद है ॥३५५॥

[॥ इति द्वितीयः पादः ॥]

[अथ तृतीयः पादः—]

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥३५६॥

—अ० ४ । ३ । १ ॥

शेष अर्थ में युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिकों से खञ् और चकार से छ प्रत्यय हो, और अन्यतरस्यां ग्रहण से पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—युष्माकमयं यौष्माकीणः; आस्माकीनः; युष्मदीयः; अस्मदीयः; यौष्माकः; आस्माकः ॥३५६॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥३५७॥

—अ० ४ । ३ । २ ॥

शेष अर्थों में तस्मिन् नाम खञ् और अण् प्रत्यय परे हो, तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान में यथासंख्य करके युष्माक और अस्माक आदेश हों । जैसे—यौष्माकीणः; आस्माकीनः यौष्माकः; आस्माकः ।

यहां 'खञ् और अण् प्रत्यय के परे' इसलिये कहा है कि—युष्मदीयः; अस्मदीयः, यहां छ के परे आदेश न हों ॥३५७॥

तवकममकावेकवचने ॥३५८॥ —अ० ४ । ३ । ४ ॥

जो एकवचन अर्थात् एक अर्थ की वाचक विभक्ति तथा अण् और खञ् प्रत्यय परे हों, तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को तवक और ममक आदेश हों। जैसे—तावकीनः; मामकीनः; तावकः; मामकः ॥३५८॥

कालाट्ठञ् ॥३५९॥ —अ० ४ । ३ । ११ ॥

शेष अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मासिकः; आर्द्धमासिकः; सांवत्सरिकः इत्यादि ॥३५९॥

श्राद्धे शरदः ॥३६०॥ —अ० ४ । ३ । १२ ॥

जो शेष अर्थों में श्राद्ध अभिधेय रहे, तो शरद् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—शरदि भवं शारदिकम्, जो श्राद्ध हो। नहीं तो शारदम्, ऋतुवाची के होने से अण् हो जाता है। और यह सूत्र भी अण् का ही अपवाद है ॥३६०॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥३६१॥

—अ० ४ । ३ । १६ ॥

शेष अर्थों में सन्धिवेला आदि गण, ऋतु और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—सन्धिवेलायां लब्धं सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्। ऋतु—ग्रैष्मम्; शैशिरम्। नक्षत्र—तैषम्; पौषम्।

यह सूत्र सामान्यकालवाची से ठञ् प्राप्त है, उसका अपवाद है ॥३६१॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टचुटचुलौ तुट् च[1] ॥३६२॥

—अ० ४ । ३ । २३ ॥

शेष अर्थों में सायं चिरं प्राह्णे प्रगे और अव्यय प्रातिपदिकों से टचु और टचुल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुट् का आगम भी हो ।

दिन का जो अन्त है, उस अर्थ में सायं शब्द है । जैसे—साये भवं सायन्तनम्; चिरन्तनम्; प्राह्णेतनम्; प्रगेतनम्; दोषातनम्; दिवातनम्; इदानीन्तनम्; अद्यतनम् ॥३६२॥

वा०—चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः[2] ॥३६३॥

चिर परुत् और परारि इन तीन अव्यय प्रातिपदिकों से त्न प्रत्यय होवे । जैसे—चिरत्नम्; परुत्नम्; परारित्नम् ॥३६३॥

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च ॥३६४॥

प्रग प्रातिपदिक से वेद में त्न प्रत्यय और गकार का लोप हो । जैसे—प्रगे भवं प्रत्नम् ॥३६४॥

वा०—अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥३६५॥

अग्र आदि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से डिमच् प्रत्यय हो । डित्प्रकरण यहाँ टिलोप होने के लिये है ॥

---

१. यहां सायं तथा चिरं ये शब्द मकारान्त, [illegible] ये एकारान्त निपातन किये हैं । और जो ये [illegible], तो इनका पाठ सूत्र में व्यर्थ होवे, क्योंकि [illegible] जाता ॥

२. यहां पूर्वसूत्र से टचु, टचुल् [illegible] वार्त्तिक समझने चाहियें ॥

जैसे—अग्रे जातोऽग्रिमः; आदौ जात आदिमः; पश्चात् जातः पश्चिमः ॥३६५॥

वा०—अन्ताच्च ॥३६६॥

अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय हो।

जैसे—अन्ते भवोऽन्तिमः ॥३६६॥

तत्र जातः ॥३६७॥ —अ० ४।३।२५॥

घ आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष अर्थों में विधान कर चुके हैं, उनके जात आदि अर्थ दिखाये जाते हैं। और तत्र इत्यादि समर्थविभक्ति जाननी चाहिये।

समर्थों में प्रथम सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से जो जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं, सो सो जात आदि अर्थों में होवे। जैसे—स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः; माथुरः; औत्सः; औदपानः; राष्ट्रियः; अवारपारीणः; शाकलिकः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; कात्रेयकः; औम्भेयकः इत्यादि ॥३६७॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽऽषाढाबहुलाल्लुक् ॥३६८॥ —अ० ४।३।३५॥

जात आदि अर्थों में श्रविष्ठा आदि नक्षत्रवाची शब्दों से विहित तद्धितप्रत्ययों का लुक् हो। [जैसे—] श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः; फल्गुनः; अनुराधः; स्वातिः; तिष्यः; पुनर्वसुः; हस्तः; विशाखः; आषाढः; बहुल[1] ॥३६८॥

---

१. यहां श्रविष्ठा आदि शब्दों से तद्धित प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धितलुकि १।२।४९) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। फिर जो ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हों तो टाप् होगा। जैसे—श्रविष्ठा॥

वा०—लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम् ।। ३६९ ।।

जात अर्थ स्त्री अभिधेय हो, तो चित्रा रेवती और रोहिणी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—चित्रायां जाता कन्या चित्रा; रेवती; रोहिणी[1] ।।३६९।।

वा०—फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ ।।३७०।।

पूर्व वार्तिक से स्त्रीलिङ्ग की अनुवृत्ति आती है ।

फल्गुनी और अषाढा नक्षत्रवाची शब्दों से ट और अन् प्रत्यय यथासंख्य करके हों । जैसे—फल्गुन्यां जाता कन्या फल्गुनी; अषाढा[2] ।।३७०।।

वा०—श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् ।।३७१।।

श्रविष्ठा और अषाढा प्रातिपदिकों से छण् प्रत्यय हो । जैसे—श्रविष्ठायां जाताः श्राविष्ठीयाः; आषाढीयाः ।।३७१।।

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ।।३७२।।

—अ० ४ । ३ । ३५ ।।

जात अर्थ में स्थानान्त गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से विहित जो तद्धित प्रत्यय उसका लुक् हो । जैसे—गोस्थाने जातो गोस्थानः; हस्तिस्थानः; अश्वस्थानः इत्यादि; गोशालः; खरशालः ।

---

१. यहां भी पूर्व के समान स्त्रीप्रत्यय का लुक् होके चित्रा शब्द से टाप् और रेवती तथा रोहिणी शब्द का गौरादिगण में पाठ होने से ङीष् प्रत्यय हो जाता है ।।

२. यहां भी स्त्रीप्रत्यय का लुक् पूर्ववत् होके ट प्रत्यय के टित् होने से फल्गुनी शब्द से ङीप् और अषाढा शब्द से टाप् होता है ।।

यहां तद्धितलुक् होने के पश्चात् शाला शब्द के स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ।।३७२।।

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा[1] ।।३७३।।

—अ० ४ । ३ । ३६ ।।

जात अर्थ में वत्सशाला आदि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय, उसका लुक् विकल्प करके होवे । जैसे—वत्सशालायां जातः वत्सशालः; वात्सशालः; अभिजित्, आभिजितः; अश्वयुक्, आश्वयुजः; शतभिषक्, शातभिषजः ।।३७३।।

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ।।३७४।। —अ० ४ । ६ । ३७ ।।

अन्य नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो, उसका बहुल करके लुक् होवे । जैसे—रोहिणः, रौहिणः; मृगशिराः, मार्गशीर्षः ।

बहुलग्रहण से कहीं लुक् नहीं भी होता । जैसे—तैषः; पौषः इत्यादि ।।३७४।।

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ।।३७५।। —अ० ४ । ३ । ३८ ।।

कृत आदि अर्थों में सब प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—स्रुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतो वा कुशलः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रिय इत्यादि ।।३७५।।

---

१. इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है, क्योंकि वत्सशाला शब्द से किसी सूत्र करके लुक् नहीं पाता, और अभिजित् आदि नक्षत्रवाचियों से बहुल करके प्राप्त है, उसका विकल्प किया है ।।

प्रायभवः[1] ॥३७६॥ —अ० ४ । ३ । ३९ ॥

बहुधा होने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—स्रुघ्ने प्रायेण भवः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥३७६॥

सम्भूते ॥३७७॥ —अ० ४ । ३ । ४१ ॥

सम्भव अर्थ में सप्तमीसमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; शालीयः; मालीयः; इत्यादि ॥३७७॥

कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥३७८॥

—अ० ४ । ३ । ४३ ॥

साधु पुष्प्यत् और पच्यमान अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—हेमन्ते साधुः हैमन्तं वस्त्रम्; शैशिरमनुलेपनम्; वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्य कुन्दलताः; ग्रैष्म्यः पाटलाः; शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः; ग्रैष्मा यवाः इत्यादि ॥३७८॥

उप्ते च ॥३७९॥ —अ० ४ । ३ । ४४ ॥

उप्त कहते हैं बोने को, इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होवें । जैसे—हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता इक्षवः; ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्माः शालयः; शारदा यवाः इत्यादि ॥३७९॥

---

१. प्रायभव उसको कहते हैं कि जिसके होने का नियम न हो, बहुधा होता होवे ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥३८०॥ —अ० ४ । ३ । ४५ ॥

उक्त अर्थ में सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो ।

अश्वयुक् शब्द अश्विनी नक्षत्र का पर्याय है । उससे युक्तकाल अर्थ में अण् हुआ है । स्त्रीलिङ्ग तिथि का विशेषण है । [जैसे—] आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका यवाः ॥३८० ॥

देयमृणे ॥ ३८१॥ - अ० ४ । ३ । ४७ ॥

ऋण देने अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—प्रावृषि देयमृणं प्रावृषेण्यम्; वैशाखे देयमृणं वैशाखम्; मासे देयमृणं मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सांवत्सरिकम् इत्यादि ।

यहां 'ऋण' ग्रहण इसलिये है कि—मुहूर्त्ते देयं भोजनम्, यहां प्रत्यय न हो ॥३८१ ॥

व्याहरति मृगः ॥३८२॥ —अ० ४ । ३ । ५१ ॥

व्याहरति क्रिया का मृग कर्त्ता वाच्य रहे, तो सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से जिस जिस से जो जो प्रत्यय विधान किया हो वही वही होवे । जैसे—निशायां व्याहरति मृगः नैशिकः, नैशः; प्रादोषिकः, प्रादोषः[1] सायन्तनः इत्यादि ॥३८२ ॥

---

१. यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च ॥ अ० ४।३।१४) इस पूर्वलिखित सूत्र से ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥

तदस्य सोढम्[1] ॥३८३॥ —अ० ४ । ३ । ५२ ॥

षष्ठी के अर्थ में सोढ समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—निशाऽध्ययनं सोढमस्य छात्रस्य नैशः, नैशिकः; प्रादोषः, प्रादोषिकः; हेमन्त-सहचरितं शीतं सोढमस्य हैमन्तः इत्यादि ॥ ३८३ ॥

तत्र भवः ॥३८४॥ —अ० ४ । ३ । ५३ ॥

यहां पूर्वसूत्र से ही तत्र ग्रहण की अनुवृत्ति चली आती, फिर तत्र ग्रहण करने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे।

तत्र अर्थात् वहाँ हुआ होता वा होगा, इस अर्थ में सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः; अश्वपतौ भव आश्वपतः; औत्सः; दैत्यः; आदित्यः; पृथिव्यां भवः पार्थिवः; वानस्पत्यः; स्त्रैणः; पौंस्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३८४ ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥३८५॥ —अ० ४ । ३ । ५४ ॥

भवार्थ में सप्तमीसमर्थ दिश् आदि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। [जैसे—] दिशि भवं दिश्यम्; वर्ग्यम्; पूग्यम् इत्यादि। यह सूत्र अण् का बाधक है ॥ ३८५ ॥

शरीरावयवाच्च ॥३८६॥ —अ० ४ । ३ । ५५ ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय आदि प्रातिपदिकों से भवार्थ में यत् प्रत्यय हो। जैसे—तालुनि भवं तालव्यम्; दन्त्यम्; ओष्ठ्यम्;

---

१. इस सूत्र में सहचारोपाधि ली जाती है। क्योंकि काल का सहना क्या है, उस काल में जो विशेष करके हो उसका सहना ठीक है, जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष को सह सके वह हेमन्त कहावे ॥

हृद्यम्; नाभ्यम्; चक्षुष्यम्; नासिक्यम्; पायव्यम्; उपस्थ्यम् इत्यादि ।। ३८६ ।।

अव्ययीभावाच्च ।।३८७।। —अ० ४ । ३ । ५९ ।।

सप्तमीसमर्थ अव्ययीभावसंज्ञक प्रातिपदिकों से **भवार्थ में** ञ्य प्रत्यय हो ।। ३८७ ।।

वा०—ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ।।३८८।।

सूत्र में जो अव्ययीभाव प्रातिपदिकों का ग्रहण है, उसका नियम इस वार्त्तिक से किया है कि—परिमुखादि अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ही ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—परिमुखं भवं पारिमुख्यम्; पार्य्योष्ठ्यम्; पारिहनव्यम् ।

यहाँ 'परिमुखादि का परिगणन' इसलिये है कि—उपकूलं भव औपकूल:; औपशाल:, यहां ञ्य प्रत्यय न होवे ।। ३८८ ।।

अन्त:पूर्वपदाट्ठञ् ।।३८९।। —अ० ४ । ३ । ६० ।।

पूर्ववार्त्तिक से परिमुखादि का नियम होने से अण् प्राप्त है, उसका बाधक यह सूत्र है ।

अन्तर् शब्द जिनके पूर्व हो ऐसे अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो भव अर्थ में । जैसे—अन्तर्वेश्मनि भवमान्तर्वेश्मिकम्; आन्त:सद्मिकम्; आन्तर्गेहिकम् इत्यादि ।।३८९ ।।

का०—समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते ।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च ।।३९०।।

समान शब्द से और समान शब्द जिनके आदि में हो उन प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे । जैसे—समाने भव: सामानिक: । तदादि से—सामानग्रामिक:; सामानदेशिक: ।

तथा अध्यात्मादि प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय होना चाहिये। जैसे—अध्यात्मनि भवमाध्यात्मिकम्; आधिदैविकम्; आधिभौतिकम्।

मकारान्त ऊर्ध्वम् शब्द जिनके पूर्व हो, ऐसे दम और देह प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—ऊर्ध्वं दमे भवमौर्ध्वंदमिकम्; और्ध्वंदेहिकम्।

और लोक शब्द जिन के उत्तरपद में हो, उन प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—इह लोके भवमैहलौकिकम्; पारलौकिकम्।

अधिदेव अधिभूत, इहलोक और परलोक ये चार शब्द अनुशतिकादि गण में पढ़े हैं, इससे उभयपदवृद्धि होती है ॥ ३९० ॥

का०—मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च।
ईयः कार्य्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा ॥३९१॥

तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्श्व प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होवे। छ के स्थान में ईय आदेश हो जाता, फिर ईय पाद पूर्ण होने के लिये कहा है। जैसे—मुखतो भवं मुखतीयम्; पार्श्वतीयम्[1]।

जन और पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय और प्रातिपदिकों को कुक् का आगम भी होवे। जैसे—जने भवो जनकीयः; परकीयः।

---

१. यहां भसंज्ञा के होने से तसन्त अव्यय के टिभाग का लोप हुआ है॥

मध्य प्रातिपदिक से ईय मण् और मीय प्रत्यय होवें । जैसे—मध्ये भवो मध्यीयः, माध्यमः, माध्यमीयः[1] ।। ३९१ ।।

का०—मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा ।
बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ञ्य इष्यते ।।३९२।।

मध्य शब्द को "मध्यम्" ऐसा मकारान्त आदेश और उससे दिनण् प्रत्यय हो । जैसे—माध्यन्दिन उपगायति ।

स्थामन् और अजिन शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो । जैसे—अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा । इस शब्द में पृषोदरादि से सकार को तकार हो जाता है । अजिनान्त से—कृष्णाजिने भवःकृष्णाजिनः; उष्ट्राजिनः; सिंहाजिनः; व्याघ्राजिनः इत्यादि ।

जैसे—गम्भीर शब्द से ञ्य प्रत्यय होता है, वैसे बाह्य, दैव्य और पाञ्चजन्य इन तीन शब्दों में भी ञ्य जानो । बहिस् शब्द के टिभाग का लोप हो जाता है ।। ३९२ ।।

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ।।३९३।। —अ० ४ । ३ । ६२ ॥

यह शरीरावयव से यत् प्राप्त है, उसका बाधक है ।

भवार्थ में जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो । जैसे—जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयं स्थानम्; अङ्गुलीयः ।। ३९३ ।।

---

१. गहादिगण में पृथिवी मध्य शब्द के स्थान में मध्यम आदेश और छ प्रत्यय होके भी मध्यमीय शब्द साधा है, इससे अर्थभेद जानो शब्द-भेद तो नहीं है ।।

वर्गान्ताच्च ॥३९४॥ —अ० ४ । ३ । ६३ ॥

भवार्थ में वर्गान्त प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो । [जैसे —] कवर्गे भवो वर्णः कवर्गीयः; चवर्गीयः; पवर्गीयः इत्यादि ॥३९४॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥३९५॥
—अ० ४ । ३ । ६६ ॥

षष्ठी और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः; सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः; स्त्रैणः; ताद्धितः; सुप्सु भवं सौपम्; तैङम्; कार्त्तम् ।

यहां 'व्याख्यातव्यनाम' ग्रहण इसलिये है कि—पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम्, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३९५ ॥

बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ॥३९६॥ —अ० ४ । ३ । ६७ ॥

व्याख्यान और भव अर्थ में षष्ठी और सप्तमीसमर्थ बह्वच् अन्तोदात्त प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो । जैसे—षात्वणत्विकः; नातानतिकम्; सामासिकः ।

यहां 'बह्वच्' ग्रहण इसलिये है कि—सौपम्; तैङम् । और 'अन्तोदात्त' इसलिये कहा है कि—सांहितः । यहां संहिता शब्द गतिस्वर से आद्युदात्त है, इसलिये ठञ् न हुआ ॥ ३९६ ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्
॥३९७॥ —अ० ४ । ३ । ७२ ॥

भव और व्याख्यान अर्थों में द्व्यच् ऋवर्णान्त ब्राह्मण ऋक् प्रथम अध्वर पुरश्चरण नाम और आख्यात ये जो व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो ।

जैसे—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः; इष्टेर्व्याख्यानः ऐष्टिकः; पाशुकः। ऋत्—चातुर्होतृकः, पाञ्चहोतृकः ब्राह्मणिकः; आर्चिकः; प्राथमिकः; आध्वरिकः; पौरश्चरणिकः ।। ३९७ ।।

वा०—नामाख्यातग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् ।।३९८।।

इस सूत्र में नाम और आख्यात शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि जिससे समस्त शब्द से भी ठक् होजावे। जैसे—नामिकः; आख्यातिकः; नामाख्यातिकः ।। ३९८ ।।

तत आगतः ।।३९९।। —अ० ४ । ३ । ७४ ।।

आगमन अर्थ में पञ्चमीसमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ।। ३९९ ।।

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ।।४००।।

—अ० ४ । १ । ७७ ।।

आगमन अर्थ में पञ्चमीसमर्थ विद्यासम्बन्ध और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो।

जैसे—विद्यासम्बन्ध—उपाध्यायादागतं धनमौपाध्यायकम् शैष्यकम्; आचार्यकम् । योनिसम्बन्ध—पैतामहकम्; मातामहकम्; मातुलकम्; श्वाशुरकम् इत्यादि ।। ४०० ।

ऋतष्ठञ् ।।४०१।। —अ० ४ । ३ । ७८ ।।

पंचमीसमर्थ ऋकारान्त विद्यासम्बन्ध और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—विद्यासम्बन्ध—होतुरागतः पुरुषो होतृकः; पैतृकम् । योनिसम्बन्ध—भ्रातृकम्; स्वासृकम्; मातृकम् ।

ऋकारान्त वृद्ध प्रातिपदिकों से भी परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय को बाध के ठञ् ही होता है । जैसे—शास्तुरागतं शास्तृकम् इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पितुर्यच्च ॥४०२॥ —अ० ४ । ३ । ७९ ॥

आगत अर्थ में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठञ् प्रत्यय हो । जैसे—पितुरागतं पित्र्यम्, पैतृकम् ॥ ४०२ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥४०३॥ —अ० ४ । ३ । ८० ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे—अङ्क अर्थ में औपगवानामङ्कः औपगवकः; कापटवकः; नाडायनकः; चारायणकः इत्यादि में वुञ् प्रत्यय होता है, ऐसे ही औपगवेभ्य आगतम् औपगवकम्, कापटवकम्; नाडायनकम्; चारायणकम् इत्यादि में भी वुञ् होवे ॥ ४०३ ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥४०४॥

—अ० ४ । ३ । ८१ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो । जैसे—गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम्, पक्ष में गव्यम्; समादागतं समरूप्यम्, समीयम्; विषमरूप्यम्, विषमीयम् । मनुष्य—देवदत्तरूप्यम्, देवदत्तीयम्, दैवदत्तम्; यज्ञदत्तरूप्यम्, यज्ञदत्तीयम्, याज्ञदत्तम् ॥ ४०४ ॥

मयट् च ॥४०५॥ —अ० ४ । ३ । ८२ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मयट् प्रत्यय हो । जैसे—सममयम्; विषमयम्; देवदत्तमयम्; यज्ञदत्तमयम् ।

टकार ङीप् होने के लिये है = सममयी ।। ४०५ ।।

प्रभवति ।।४०६।। —अ० ४ । ३ । ८३ ।।

उससे जो उत्पन्न होता है, इस अर्थ में पंचमीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—हिमवत: प्रभवति हैमवती गङ्गा; दारदी सिन्धु: ।। ४०६ ।।

विदूराञ्ञ्य: ।।४०७।। —अ० ४ । ३ । ८४ ।।

पूर्वोक्त अर्थ में विदूर प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो । जैसे—विदूरात्प्रभवति वैदूर्य्यो मणि: ।। ४०७ ।।

का०—वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा ।
न वै तत्रेति चेद् ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत् ।।४०८।।

लोक में जिस मणि को वैदूर्य्य कहते हैं, वह वालवाय नामक पर्वत से उत्पन्न होता है । विदूर शब्द नगर और पर्वत दोनों का नाम है । परन्तु विदूर नगर में उस मणि का संस्कार किया जाता है । इसलिये यह विचार करना चाहिये कि विदूर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रत्यय क्यों होता है ? वैदूर्य्यमणि तो वालवाय पर्वत से उत्पन्न होता है ।

इसका समाधान यह है कि—वालवाय शब्द के स्थान में विदूर आदेश जानो, अथवा वालवाय का पर्य्यायवाची विदूर शब्द भी है ।

अब सन्देह यह रहा कि वालवाय पर्वत के समीप रहनेवाले वालवाय को विदूर नहीं कहते, फिर पर्य्यायवाची क्यों कर हो सकता है ?

इसका समाधान यह है कि—जैसे—वाराणसी को वैश्य लोग 'जित्वरी' कहते हैं। वैसे ही वैयाकरण लोग परम्परा से वालवाय को विदूर कहते चले आये हैं ॥ ४०८ ॥

तद्गच्छति पथिदूतयोः ॥४०९॥ —अ० ४ । ३ । ८५ ॥

'उसको जाता है' इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जो गच्छति क्रिया के पन्था और दूत कर्त्ता वाच्य हों तो।

जैसे—स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा; माथुरः; पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः[1] इत्यादि ॥४०९॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥४१०॥ —अ० ४ । ३ । ८६ ॥

जो अभिनिष्क्रामति क्रिया का द्वार कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति द्वारं स्रौघ्नम्; माथुरम्; राष्ट्रियम्; वाराणसीमभिनिष्क्रामति वाराणसेयम्; ऐन्द्रप्रस्थम्; लावपुरम् इत्यादि।

यहां द्वार ग्रहण इसलिये है कि—मथुरामभिनिष्क्रामति पुरुषः, यहां प्रत्यय न हो ॥ ४१० ॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥४११॥ —अ० ४ । ३ । ८७ ॥

जिस विषय को लेके ग्रन्थ रचा जावे, उस अर्थ में द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुभद्रामधि-

१. वाराणसीं गच्छति पन्था दूतो वा वाराणसेयः। वाराणसी शब्द का नद्यादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥

कृत्य कृतो ग्रन्थः सौभद्रः; गौरिमित्रः; यायातः; शरीरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरः; वर्णाश्रममधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वार्णाश्रमः; कारकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः कारकीयः इत्यादि ॥ ४११ ॥

सोऽस्य निवासः ॥४१२॥ —अ० ४ । ३ । ८९ ॥

'वह इसका निवासस्थान है', इस अर्थ में प्रथमासमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्त्रुघ्नो निवासोऽस्य पुरुषस्य स स्त्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; वाराणसी निवासोऽस्य वाराणसेयः; ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ४१२ ॥

अभिजनश्च[1] **॥४१३॥** —अ० ४ । ३ । ९० ॥

'वह इसका उत्पत्तिस्थान है,' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। [जैसे—] स्त्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्त्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः; ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ४१३ ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥४१४॥

—अ० ४ । ३ । ९१ ॥

आयुधजीवि अर्थात् शस्त्रास्त्रविद्या से जीविका करनेहारे वाच्य रहें, तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां ते हृद्गोलीया आयुधजीविनः; रैवतकीयाः; वालवायीयाः इत्यादि।

---

१. निवास और अभिजन में इतना भेद है कि जहां वर्त्तमानकाल में रहते हों उसको निवास, और जहां पिता दादे आदि कुटुम्ब के पुरुष रहे हों उसको अभिजन कहते हैं ॥

यहां 'आयुधजीवियों' का ग्रहण इसलिये है कि—ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनमेषामाक्षोदा ब्राह्मणाः। और 'पर्वत' ग्रहण इसलिये है कि साङ्काश्यमभिजनमेषां ते साङ्काश्यका आयुधजीविनः, यहां छ प्रत्यय न होवे ॥ ४१४ ॥

भक्तिः ॥४१५॥ —अ० ४। ३। ९५॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामेयकः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; राष्ट्रियः; माथुरः इत्यादि ॥ ४१५ ॥

अचित्तादेशकालाट्ठक् ॥४१६॥

—अ० ४। ३। ९६॥

'वह इसका सेवनीय है', इस अर्थ में प्रथमासमर्थ जो देश और काल को छोड़ के अचेतनवाची प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः; शाष्कुलिकः; पायसिकः; साक्तुकः।

यहां 'अचित्त' ग्रहण इसलिये है कि—दैवदत्तः। 'अदेश' इसलिये है कि—स्रौघ्नः। और 'अकाल' इसलिये है कि—ग्रैष्मः, यहां भी ठक् न हो ॥ ४१६ ॥

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥४१७॥ —अ० ४। ३। १००॥

बहुवचन में जनपद नाम देशवाची शब्दों के तुल्य जो जनपदि अर्थात् देश के स्वामी क्षत्रियवाची शब्द हैं, उनको जनपदवत् नाम (जनपदतदवध्योश्च) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं, वे ही प्रत्यय भक्तिसमानाधिकरण उन

क्षत्रियवाची शब्दों से यहां होवें। जैसे—अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य स आङ्गकः; वाङ्गकः; सौह्मकः इत्यादि।

'जनपदी' क्षत्रियों का ग्रहण इसलिये है कि—पञ्जाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य स पाञ्जालः; यहां वुञ् न हो। 'सर्व' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे। जैसे—मद्राणां वृजीणां वा राजा माद्रः; वार्ज्यः; माद्रो भक्तिरस्य स मद्रकः; वृजिकः। (मद्रवृज्योःकन) इससे कन् प्रत्यय प्रकृति को ह्रस्व होने से होता है॥ ४१७॥

तेन प्रोक्तम्॥४१८॥ —अ० ४। ३। १०१॥

'उसने जो कहा' इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—उत्सेन प्रोक्तमौत्सम्; दैत्यम्; आदित्यम्; प्रजापतिना प्रोक्तं प्राजापत्यम्; स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्; पौंस्नम्; पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्; काशकृत्स्नम्; काणादम्; गौतमम् इत्यादि॥ ४१८॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु॥४१९॥

—अ० ४। ३। १०५॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्प वाच्य हों, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से णिनि प्रत्यय हो।

जैसे—पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भल्लवेन प्रोक्ता भाल्लविनः; शाठ्यायनिनः; ऐतरेयिणः,। कल्पों में—पैङ्गी कल्पः; आरुणपराजी कल्पः इत्यादि॥ ४१९॥

वा०—याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥४२०॥

याज्ञवल्क्य आदि शब्दों से णिनि प्रत्यय न होवे, पुराणप्रोक्त होने से प्राप्त है। [जैसे—] याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि; सौलभानि इत्यादि, यहां अण् प्रत्यय होता है।

काशिकाकार जयादित्य आदि लोग इसको नहीं समझे। इसीलिये यह लिखा है कि याज्ञवल्कादि ब्राह्मण पुराणप्रोक्त नहीं, किन्तु पीछे बने हैं। सो महाभाष्य के विरुद्ध होने से मिथ्या समझना चाहिए ॥ ४२० ॥

तेनैकदिक् ॥४२१॥ —अ० ४। ३। ११२॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वृक्षेणैकदिक् वार्क्षः; वाराण्स्वा एकदिक् वाराणसेयो ग्रामः; सुदाम्नैकदिक् सौदामनी विद्युत्; हिमवतैकदिक् हैमवती इत्यादि ॥४२१॥

तसिश्च ॥४२२॥ —अ० ४। ३। ११३॥

एकदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय भी हो।

तसि प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा जाननी, स्वरादिगण में पाठ होने से। [जैसे—] नासिकया एकदिक् नासिकातः; सुदामतः, हिमवत्तः; पीलुमूलतः इत्यादि ॥४२२॥

उरसो यच्च ॥४२३॥ —अ० ४। ३। ११४॥

तेनैकदिक् इस विषय में उरस् प्रातिपदिक से यत् और चकार से तसि प्रत्यय भी हो। जैसे—उरसा एकदिक् उरस्यः, उरस्तः ॥४२३॥

उपज्ञाते ॥४२४॥ —अ० ४ । ३ । ११५ ॥

उपज्ञात अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम्; पातञ्जलं योगशास्त्रम्; काशकृत्स्नम्; गुरुलाघवम्; आपशलम् ।

जो अपने आप जाना जाय उसको 'उपज्ञात' कहते हैं, अर्थात् विद्यमान वस्तु को जानना चाहिए ॥४२४॥

कृते ग्रन्थे ॥४२५॥ —अ० ४ । ३ । ११६ ॥

'जो किया जावे, सो ग्रन्थ होवे तो', इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो । जैसे—वररुचिना कृताः वाररुचाः श्लोकाः; मानवो ग्रंथः; भार्गवो ग्रन्थः ।

यहां 'ग्रन्थ' ग्रहण इसलिए है कि—कुलालकृतो घटः, यहां प्रत्यय न हो ॥४२५॥

तस्येदम् ॥४२६॥ —अ० ४ । ३ । १२० ॥

'उसका यह है', इस अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथा-विहित प्रत्यय हों । जैसे—वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः; राज्ञः कुमारी राजकीया, राजकीयो भृत्यः, यहां (राज्ञः क च) इससे ककारादेश हो जाता है; उपगोरिदम् औपगवम्; कापटवम्; राष्ट्रियम्; अवारपारीणम् देवस्येदं दैवम्, दैव्यम् इत्यादि ॥४२६॥

वा०—वहेस्तुरणिट् च ॥४२७॥

तृच् प्रत्ययान्त वह धातु से अण् प्रत्यय को इट् का आगम भी हो । जैसे—संवोढुः स्वं सांवहित्रम् ॥४२७॥

वा०--अग्नीधः शरणे रञ् भ च ॥४२८॥

शरण नाम घर अर्थ में, अग्नीध प्रातिपदिक से रञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे पूर्व की भ संज्ञा भी जाननी चाहिये। जैसे—आग्नीधः शरणम् आग्नीध्रम् ॥४२८॥

वा०—समिधामाधाने षेण्यण् ॥४२९॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान षष्ठी का अर्थ होवे, तो षेण्यण् प्रत्यय होवे। षित्करण ङीष् प्रत्यय होने के लिये है। [जैसे—] सामिधेन्यो मन्त्रः, सामिधेनी ऋक् ॥४२९॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥४३०॥

—अ० ४ । ३ । १२३ ॥

जिन जिन का परस्पर वैर और योनिसम्बन्ध हो, उनके वाची द्वन्द्वसमास किये प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय हो स्वार्थ में। [जैसे—] वैरद्वन्द्व से—अहिनकुलिका, वृद्ध प्रातिपदिकों से भी परत्व से वुन् होता है। जैसे—काकोलूकिका; श्वावराहिका। मैथुनिकद्वन्द्व से गर्गकुशिकिका; अत्रिभरद्वाजिका इत्यादि।

यहां लिंगानुशासन की रीति से नित्य स्त्रीलिंग होता है ॥४३०॥

वा०—वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥४३१॥

वैर अर्थ में देवासुर आदि प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय न हो, किन्तु अण् ही होवे जैसे—दैवासुरम्; राक्षोऽसुरम् इत्यादि ॥४३१॥

गोत्रचरणाद् वुञ् ॥४३२॥ —अ० ४ । ३ । १२४ ॥

गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होवे ॥४३२॥

वा०—चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥४३३॥

गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरणवाचियों से धर्म तथा आम्नाय विशेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय समझो। जैसे—गोत्र से—ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनम्; वृद्धप्रातिपदिकों से भी परत्व से वुञ् ही होता है। जैसे—गार्गकम्; वात्सकम् इत्यादि। चरणवाचियों से—कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम्; मौदकम्; पैप्पलादकम्; कालापकम् इत्यादि।

अधिकार होने से अण् पाता है, उसका यह बाधक है। ॥४३३॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥४३४॥

—अ० ४।३।१२५॥

पूर्व सूत्र से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

अञन्त यञन्त और इञन्त षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थों में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—विदानां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा वैदः; और्वः। यञन्त से—गर्गाणां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा गार्गः; वात्सः। इञन्त से—दाक्षः; प्लाक्षः ॥४३४॥

वा०—सङ्घादिषु घोषग्रहणम् ॥४३५॥

सङ्घ आदि अर्थों में जो प्रत्यय कहे हैं, वे घोष अर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवें। जैसे—गार्गो घोषः; वात्सो घोषः; दाक्षः प्लाक्षो वा इत्यादि ॥४३५॥

शकलाद्वा ॥४३६॥ —अ० ४ । ३ । १२८ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि शकल शब्द गर्गादिगण में पढ़ा है, उसके यञन्त होने से पूर्व सूत्र से नित्य अण् प्राप्त है, उसका विकल्प किया है ।

षष्ठीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त शकल प्रातिपदिक से विकल्प करके अण् प्रत्यय होवे, और पक्ष में गोत्रवाची से वुञ् समझना चाहिए । [जैसे—] शाकल्यस्य सङ्घोऽङ्को लक्षणं घोषो वेति शाकलः; शाकलकः ।

इस सूत्र पर **काशिका** और **सिद्धान्तकौमुदी** रचने और पढ़ने वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिए । वे लोग शकल शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् करके इस शकल शब्द को चरणवाची मानते और संघादि अर्थों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं, सो यह उन लोगों का अर्थ मिथ्या है । क्योंकि जो (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शकल प्रातिपदिक चरणवाची हुआ, फिर उससे संघादि अर्थों में कैसे प्रत्यय होगा, यह कथन पूर्वापर विरुद्ध है । क्योंकि चरणवाचियों से धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय कहे हैं । और महाभाष्य से भी विरुद्ध है । महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि बहुत स्थलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल लिखते हैं, फिर चरणवाची होगा तो लक्षण अर्थ में शाकल्य शब्द से क्यों प्रत्यय हो सकेगा ॥४३६॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥४३७॥ —अ० ४ । ३ । १३१ ॥

यहां गोत्रवाचियों से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है ।

रैवतिकादि प्रातिपदिकों से सबन्ध सामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होवे । जैसे—रैवतिकानामयं संघो घोषो वा रैवतिकीयः; स्वापिशोयः; क्षैमवृद्धीयः इत्यादि ।।४३७।।

वा०—कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ।।४३८।।

यहां भी गोत्रप्रत्ययान्तों से वुञ् प्राप्त है, उसका बाधक यह वार्त्तिक है।

कौपिञ्जल और हास्तिपद प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में अण् प्रत्यय होवे । जैसे—कौपिञ्जलस्य संघः कौपिञ्जलः; हास्तिपदः ।।४३८।।

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च[1] ।।४३९।।

पूर्व वार्त्तिक से अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति चली आती है।

आथर्वणिक शब्द से धर्म तथा आम्नाय अर्थ में अण् प्रत्यय और उसके इक भाग का लोप होवे । जैसे—आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो व आथर्वणः ।।४३९।।

---

१. अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है, उससे अधीत वेद अर्थ में ठक् होता है । अथर्वाणमधीते वेद वा आथर्वणिकः । और यह चरणवाची शब्द होने से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह वार्त्तिक अपवाद है । (कौपिञ्जल०) और (आथर्व०) ये दोनों वार्त्तिक काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे और व्याख्यान भी किये हैं। सो जो ये सूत्र ही होते तो महाभाष्य में वार्त्तिक क्यों पढ़े जाते । और कैयट ने भी लिखा है कि सूत्रों में पाठ अपाणिनीय है। इससे निश्चय होता है कि कैयट के समय से पूर्व ही किसी ने मूर्खता से सूत्रों में लिख दिये हैं।

तस्य विकारः[1] ॥४४०॥ —अ० ४ । १ । १३४ ॥

विकार अर्थ में षठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—अश्मनो विकार आश्मनः, आश्मः; भस्मनो विकारो भास्मनः; भास्मः; मार्त्तिकः; वनस्पतेर्विकारो दण्डो वानस्पत्यः इत्यादि ॥४४०॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः[2] ॥४४१॥

—अ० ४ । ३ । १३५ ॥

विकार और अवयव अर्थ में प्राणी ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों, परन्तु प्राणिवाची शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ् कहेंगे।

जैसे [प्राणिवाची]—कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः; मायूरः; तैत्तिरः। ओषधिवाची—लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम्; दैवदारम्; निर्वश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वश्यम्। वृक्षवाची—खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्; बार्बुरम्; कारीरं काण्डम्, कारीरं भस्म इत्यादि ॥४४१॥

---

१. इस सूत्र में तस्य ग्रहण की अनुवृत्ति (तस्येदम्) इस सूत्र से चली आती, फिर तस्य ग्रहण का प्रयोजन यह है कि यहां से पूर्व पूर्व शेषाधिकार की समाप्ति समझी जावे, अर्थात् विकार अवयव आदि अर्थों में घ आदि प्रत्यय न होवें। और यह प्रकरण सामान्य षष्ठ्यर्थ का बाधक है ॥

२. यह सूत्र नियमार्थ होने के लिये पृथक् किया है कि इस प्रकरण में प्राणी ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से विकारावयव दोनों अर्थों में, और अन्य शब्दों से केवल विकार अर्थ में ही प्रत्यय होवें। और ये दोनों सूत्र अधिकार के लिये हैं ॥

मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥४४२॥

—अ० ४। ३। १४३॥

विकार और अवयव अर्थ में लौकिकप्रयोगविषयक प्रकृतिमात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प करके हो, भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़के। [जैसे—] अश्ममयम्, आश्मनः; मूर्वामयम्, मौर्वम्; वनस्पतेर्विकारो वनस्पतिमयम्, वानस्पत्यम्।

यहां 'भाषा' ग्रहण इसलिये है कि—बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्, यहां मयट् न हो। और 'अभक्ष्याच्छादन' ग्रहण इसलिये है कि—मौद्गः सूपः; कार्पासमाच्छादनम्, यहां भी मयट् न होवे ॥४४२॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥४४३॥ —अ० ४। ३। १३९॥

यहां नित्यग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है।

भक्ष्य और आच्छादनरहित विकार और अवयव अर्थ हों, तो षष्ठीसमर्थ वृद्धसंज्ञक और शरादिगण प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोगों में मयट् प्रत्यय नित्य ही होवे।

जैसे—आम्रस्य विकारोऽवयवो वा आम्रमयम्; शालमयम्; तालमयम् इत्यादि, यहां वृद्धप्रातिपदिकों से छ प्रत्यय प्राप्त है, उसका बाधक मयट् है। शरादि—शरमयम्; दर्भमयम् इत्यादि ॥४४३॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥४४४॥

—अ० ४। ३। १४९॥

जातरूप शब्द सुवर्ण का पर्य्यायवाची है। बहुवचन निर्देश से सुवर्णवाचकों का ग्रहण होता है।

परिमाण विकार अर्थ होवे, तो सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—अष्टापदस्य विकार आष्टापदम्; जातरूपम्; सौवर्णम्; रौक्मम् इत्यादि।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसलिये है कि—सुवर्णमयः प्रासादः, यहां अण् प्रत्यय न हो। यह मयट् का अपवाद है ॥४४४॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥४४५॥—अ० ४।३।१५०॥

यह अण् का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ प्राणिवाची और रजतादि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो, विकार और अवयव अर्थों में। [जैसे—]—प्राणी—कपोतस्य विकारः कापोतम्; मायूरम्; तैत्तिरम्। रजतादि—राजतम्; सैसम्; लौहम् इत्यादि ॥४४५॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥४४६॥ —अ० ४।३।१५२॥

जिस जिस परिमाणवाची प्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में जो जो प्रत्यय होता है, उसी उसी प्रातिपदिक से वही वही प्रत्यय यहां विकार अवयव अर्थ में होवे। जैसे—निष्केण क्रीतं नैष्किकम् होता है, वैसे ही—निष्कस्य विकारो नैष्किकः; शत्यः, शतिकः, द्विनिष्कः, द्विनैष्किकः इत्यादि ॥४४६॥

फले लुक् ॥४४७॥ —अ० ४।३।॥ १५९॥

विकारावयव फल अर्थ अभिधेय हो, तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—आमलक्याः फलम् आमलकम्; बदर्य्याः फलानि बदराणि; कुबलकम्; बिम्बम्[1] इत्यादि ॥४४७॥

---

१. यहां सर्वत्र तद्धित प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धितलुकि) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है॥

लुप् च[1] **॥ ४४८ ॥** —अ० ४ । ३ । १६२ ॥

जम्बू प्रातिपदिक से विहित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प करके लुप् होवे। जैसे—जम्ब्वा विकारः फलं जम्बूः फलम् ॥४४८॥

वा०—फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम् ॥४४९॥

जिन गेहूं जौ धान आदि फलों के पकने के समय में उनके वृक्ष सूख जाते हैं, उनसे भी विहित विकारावयव प्रत्यय का नित्य लुप् होवे। जैसे—व्रीहीणां फलानि व्रीहयः; गोधूमाः; यवाः; माषाः; तिलाः; मुद्गाः; मसूराः इत्यादि ॥४४९॥

वा०—पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥४५०॥

पुष्प और मूल विकारावयव अर्थ हों, तो बहुल करके प्रत्यय का लुप् हो। जैसे—मल्लिकायाः पुष्पं मूलं वा मल्लिका; करवीरम्; बिसम्; मृणालस्य पुष्पं मूलं वा मृणालम्।

बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता। जैसे—पाटलानि पुष्पाणि मूलानि वा; बैल्वानि फलानि ॥४५०॥

[॥ इति तृतीयः पादः ॥]

---

१. यहां पूर्व सूत्र से लुक् प्राप्त है, फिर लुक्विधान इसलिये है कि (लुपि युक्तव०) इससे लिङ्ग और वचन भी युक्तवत् हो जावे, नहीं तो फल का विशेषण नपुंसकलिङ्ग होता ॥

[अथ चतुर्थः पादः—]

प्राग्वहतेष्ठक् ॥ ४५१ ॥ —अ० ४ । ४ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है। (तद्वहति०) इस सूत्रपर्य्यन्त जो-जो अर्थ कहे हैं, उन सब में सामान्य से ठक् प्रत्यय होगा। जैसे—अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः इत्यादि।

इस चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में (प्राग्दीव्यतोऽण्) यह अधिकार कर चुके हैं। उसकी यहां से निवृत्ति समझो, क्योंकि अगले सूत्र में दीव्यति शब्द पढ़ा है। अण् के अधिकार की समाप्ति होने से प्रथम ही दूसरा ठक् प्रत्यय का अधिकार कर दिया। इस विषय में लौकिक दृष्टान्त यह है कि राजा जब वृद्ध होता है तो अपने जीते ही पुत्र को गद्दी पर बैठा देता है ॥४५१॥

वा०—ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् ॥४५२॥

'ऐसा वह कहता है', इस अर्थ में माशब्दादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—माशब्द इत्याह माशब्दिकः; नित्याः शब्दा इत्याह नैत्यशब्दिकः; कार्य्यशब्दिकः इत्यादि ॥४५२॥

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ ४५३ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे कहने अर्थ में। जैसे—प्रभूतमाह प्राभूतिकः; पार्य्याप्तिकः इत्यादि ॥४५३॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितीयासमर्थ सुस्नातादि प्रातिपदिकों से पूछने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिक:; सौखरात्रिक:; सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिक: इत्यादि ।।४५४।।

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ ४५५ ॥

द्वितीयासमर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो । जैसे—परदारान् गच्छति पारदारिक:; गौरुतल्पिक: इत्यादि ।।४५५।।

तेन दीव्यति खनति जयति जितम्[1] ॥ ४५६ ॥

—अ० ४ । ४ । २ ॥

दीव्यति आदि क्रियाओं के कर्त्ता वाच्य रहें, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—अक्षैर्दीव्यति आक्षिक:; कुद्दालेन खनति कौद्दालिक:; शलाकाभिर्जयति शालाकिक:; शलाकाभिर्जितं शालाकितं धनम् इत्यादि ।।४५६।।

संस्कृतम् ॥ ४५७ ॥ —अ० ४ । ४ । ३ ॥

संस्कार करने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—घृतेन संस्कृतं घार्तिकम्; तैलिकम्; दध्ना संस्कृतं दाधिकम्; ताक्रिकम् इत्यादि ।।४५७।।

---

१. यहाँ जित शब्द का पृथक् ग्रहण इसलिये है कि जि धातु का कर्म अभिधेय हो तो भी ठक् प्रत्यय हो जावे ।।

तरति ॥ ४५८ ॥ —अ० ४ । ४ । ५ ॥

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । **जैसे—**वृषभेण तरति वार्षभिकः; माहिषिकः; औडुपिकः इत्यादि ॥४५८॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ४५९ ॥ —अ० ४ । ४ । ७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है, उसका अपवाद ठन् किया है ।

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ नौ और द्व्यच् प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होवे । जैसे—नावा तरति नाविकः; घटेन तरति घाटिकः; कौम्भिकः; बाहुकः इत्यादि ॥४५९॥

चरति ॥ ४६० ॥ —अ० ४ । ४ । ८ ॥

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—शकटेन चरति शाकटिकः; राथिकः; हास्तिकः इत्यादि ॥४६०॥

आकर्षात्ष्ठल् ॥ ४६१ ॥ —अ० ४ । ४ । ९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाता है, उसका अपवाद है ।

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से ष्ठल् प्रत्यय होवे । षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिये है । [जैसे—] आकर्षेण चरति आकर्षिकः; आकर्षिकी ॥४६१॥

का०—आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च ।
आवसथात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे[१] **॥४६२॥**

---

१. यहां ठक् प्रत्यय के अधिकार में किन्हीं प्रातिपदिकों में विभक्ति के सकार को संहिता में षत्व हो जाता है, और किन्हीं प्रत्ययों में ङीष्

यह आर्य्या छन्द है। आकर्ष शब्द से ष्ठल्, पर्पादिकों से ष्ठन्, भस्त्रादिकों से ष्ठन्, कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से ष्ठन् और ष्ठच्, आवसथ शब्द से ष्ठल् और किशरादि प्रातिपदिकों से ष्ठन् ये छः प्रत्यय इस अधिकार में षित् हैं ।।४६२।।

वेतनादिभ्यो जीवति ।। ४६३ ।। —अ० ४। ४। १२ ।।

जीवने अर्थ में तृतीयासमर्थ वेदनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—वेतनेन जीवति **वैतनिक:**; जालिक:; वेशेन जीवति वैशिक:; उपदेशेन जीवति औपदेशिक:; उपस्थेन जीवति औपस्थिक:, औपस्थिकी गणिका ।।४६३।।

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ।। ४६४ ।। —अ० ४। ४। १५ ।।

हरने अर्थ में उत्संगादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिक:; औडुपिक: इत्यादि ।।४६४।।

विभाषा विवधात् ।। ४६५ ।। —अ० ४। ४। १७ ।।

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि ष्ठन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है।

हरने अर्थ में तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्ष में ठक् हो। जैसे—विवधेन हरति विवधिक:, विवधिकी; वैवधिक:; वैवधिकी ।।४६५।।

होने के लिये षित् किया है। इससे संदेह होता है कि किन प्रत्ययों में औपदेशिक षत्व और किन में विभक्ति का है। इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह कारिका है ।।

वा०—वीवधाच्च ॥ ४६६ ॥

वीवध प्रातिपदिक से भी हरने अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—वीवधेन हरति वीवधिकः, वीवधिकी; वैवधिकः, वैवधिकी।

इस वीवध शब्द को काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है। सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है। और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं। शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है, इससे प्राप्त नहीं था ॥४६६॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ —अ० ४। ४। १९ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्; जानुप्रहृतिकम्; काण्टकमर्द्दनिकम् इत्यादि ॥४६७॥

क्त्रेर्मम्नित्यमे ॥ ४६८ ॥ —अ० ४। ४। २० ॥

क्त्रि प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होवे। अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है, सो भी न रहे। जैसे—पक्त्रिमा यवागूः, उप्त्रिमं बीजम्, कृत्रिमः संसारः इत्यादि ॥४६८॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब्वक्तव्यः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये।

ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कुट्टिमा भूमिः, सेकिमोऽसिः, इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥४६७॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ —अ० ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—दध्ना संसृष्टं दाधिकम्; ताक्रिकम्; मारिचिकम्; शार्ङ्गवेरिकम्; पैप्पलिकम्; दौग्धिकी यवागूः; गौडिका गोधूमाः इत्यादि ॥४७०॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ —अ० ४ । ४ । २६ ॥

उपसिक्त अर्थात् सीचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—दध्नोपसिक्तं दाधिकम्; ताक्रिकम्; गौडिकम्; पायसिकम्; मारिचिकम् इत्यादि ।

'व्यञ्जनवाचियों' का ग्रहण इसलिये है कि—उदकेनोपसिक्तं शाकम्, यहां प्रत्यय न हो ॥४७१॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥
—अ० ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिनके पूर्व हों, ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः; आन्वीपिकः; प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः; आनुलोमिकः; प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः; आनुकूलिकः ॥४७२॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ४७३ ॥ —अ० ४ । ४ । ३० ॥

प्रयच्छति अर्थात् देने अर्थ में, जो पदार्थ दिया जाय सो निन्दित हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥४७३॥

वा०—मेस्याल्लोपो वा ॥४७४॥

प्रत्यय उत्पन्न होते समय 'मे' 'स्यात्' इन दो पदों का विकल्प करके लोप हो जावे ।

विकल्प इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे । जैसे—द्विगुणं मे स्यादिति प्रयच्छति द्वैगुणिकः; त्रैगुणिकः ॥ ४७४ ॥

वा०—वृद्धेर्वृधुषिभावः ॥४७५॥

यहां मे, स्यात् इन दो पदों की अनुवृत्ति चली आती है ।

वृद्धि शब्द को वृधुषि आदेश और ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—वृद्धिर्मे स्यादिति धनं प्रयच्छति वार्धुषिकः ॥ ४७५ ॥

उञ्छति ॥४७६॥ —अ० ४ । ४ । ३२ ॥

उञ्छने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—बदराण्युञ्छति बादरिकः; श्यामाकिकः; गोधूमानुञ्छति गौधूमिकः; काणिकः इत्यादि ॥ ४७६ ॥

रक्षति ॥४७७॥ —अ० ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षा अर्थ से द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—ग्रामं रक्षति ग्रामिकः; समाजं रक्षति सामाजिकः; गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः; कुटुम्बं रक्षति कौटुम्बिकः; नगरं रक्षति नागरिकः इत्यादि ॥ ४७७ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥४७८॥

—अ० ४ । ४ । ३५ ॥

मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ पक्षि मत्स्य और मृगवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—[पक्षि--] पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः; खैचरिकः; शाकुनिकः; शुकान् हन्ति शौकिकः; वाकिकः; मायूरिकः; तैत्तिरिकः। मत्स्य—मात्स्यिकः; मैनिकः; शाफरिकः; शाकुलिकः। मृग—मार्गिकः; हारिणिकः; सौकरिकः; सारङ्गिकः[१] ॥ ४७८ ॥

परिपन्थञ्च तिष्ठति ॥४७९॥ —अ० ४ । ४ । ३६ ॥

स्थिति और मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ परिपन्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिको दस्युः; परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिक उत्कोचकः ॥ ४७९ ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥४८०॥
—अ० ४ । ४ । ३७ ॥

इस सूत्र में माथ शब्द मार्ग का पर्य्यायवाची है।

शोधने और ज्ञान गमन प्राप्ति अर्थों में पदवी अनुपद और माथ शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः; धार्ममाथिकः; दाण्डमाथिकः इत्यादि। पदवीं धावति पादविकः; आनुपदिकः ॥ ४८० ॥

---

१. यहां शब्दों के स्वरूप का ग्रहण इसलिये नहीं होता कि (स्वरूपं०) इस पर वार्तिक पढ़ा है कि ऐसा संकेत करना चाहिये कि जिससे पक्षी मृग और मत्स्य इनके पर्यायवाची और विशेषवाचियों का भी ग्रहण हो जावे ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥४८१॥ —अ० ४ । ४ । ३९ ॥

ग्रहण करने अर्थ में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हो, उन द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः; औत्तरपदिकः इत्यादि ॥ ४८१ ॥

धर्मं चरति ॥४८२॥ —अ० ४ । ४ । ४१ ॥

आचरण अर्थ में द्वितीयासमर्थ धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—धर्मं चरति धार्मिकः ॥ ४८२ ॥

वा०—अधर्माच्च ॥४८३॥

आचरण अर्थ में अधर्म शब्द से भी ठक् हो। जैसे—अधर्मं चरति आधर्मिकः ॥ ४८३ ॥

समवायान्त्समवैति ॥४८४॥ —अ० ४ । ४ । ४३ ॥

यहां बहुवचन निर्देश से समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है।

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—समवायान् समवैति सामवायिकः; सामाजिकः; सामूहिकः; साङ्घिकः इत्यादि ॥ ४८४ ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥४८५॥

—अ० ४ । ४ । ४६ ॥

देखने अर्थ में संज्ञा वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—ललाटं

पश्यति लालाटिको भृत्यः[1]; कुक्कुटीं पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुकः ॥ ४८५ ॥

तस्य धर्म्यम् ॥४८६॥ —अ० ४ । ४ । ४७ ॥

जो कार्य धर्म का विरोधी न हो उसको धर्म्य कहते हैं।

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम्; आकरिकम्; आपणिकम् इत्यादि ॥ ४८६ ॥

ऋतोऽञ् ॥४८७॥ —अ० ४ । ४ । ४९ ॥

धर्म्य अर्थ में षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—होतुर्धर्म्यं हौत्रम्; पौत्रम; दौहित्रम्; स्वास्रम् इत्यादि ॥ ४८७ ॥

वा०—नृनराभ्यामञ्वचनम्[2] ॥४८८॥

नृ और नर शब्द से भी अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—नुर्धर्म्या नारी; एवं नरस्यापि नारी ॥ ४८८ ॥

वा०—विशसितुरिड्लोपश्च ॥४८९॥

विशसितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे इट् का लोप होवे। जैसे—विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ ४८९ ॥

---

१. लालाटिक उस सेवक को कहते हैं कि जो अच्छे प्रकार काम न करे, बैठा बैठा मालिक का मुख देखा करे ॥

२. नृ शब्द के ऋकारान्त होने से सूत्र से ही अञ् प्रत्यय हो जाता, फिर इसका वार्त्तिक में दृष्टान्त के लिये ग्रहण किया है, जैसे नृ शब्द से अञ् होकर नारी बनता है, वैसे नर शब्द से भी जानो ॥